समसामयिक अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

प्रो. कविता रस्तोगी

समसामयिक अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

प्रो. कविता रस्तोगी

भाषाविज्ञान विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

अविराम

अविराम प्रकाशन

दिल्ली-110032

ISBN 978–81–7566–71–7

मूल्य : ₹ 250

संस्करण : 2012

प्रकाशक
अविराम प्रकाशन
29/62, पहली मंजिल, गली नं. 11, विश्वास नगर,
दिल्ली–110032
फोन : 9873072324

मुद्रक : मुस्कान कम्प्यूटर्स द्वारा नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली–110032

SAMSAMYIK ANUPRAYUKTA BHASHA VIGYAN
By Prof. Kavita Rastogi Price : Rs. 250.00

भूमिका

गुरुजनों के आशीर्वाद एवं विद्यार्थी गणों के अनुरोध के परिणामस्वरूप वर्ष 2000 में 'समसामयिक भाषाविज्ञान' का प्रकाशन हुआ था। सामान्य एवं सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान के विविध पक्षों को सरल शब्दों में प्रस्तुत करने के कारण जो शीघ्र ही छात्र-छात्राओं के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय हो गई। धीरे-धीरे छात्रों की ओर से पुनः अनुरोध आने लगे, "मैम एप्लाइड लिंग्विस्टिक्स में पढ़ने के लिए सामग्री का बहुत अभाव है, नेट की तैयारी में बड़ी समस्या आती है।" यह सुनकर प्रस्तुत पुस्तक की रूपरेखा मन में बनने लगी और अन्ततः अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान जैसे विस्तृत विषय को दस अध्यायों में बाँध पुस्तक के लेखन का कार्य आरम्भ कर दिया जिसका उद्देश्य समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान, शैक्षणिक भाषाविज्ञान इत्यादि अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की शाखाओं का सामान्य परिचय प्रस्तुत करना है।

इस पुस्तक के शीर्षक में 'समसामयिक' शब्द के प्रयोग के पीछे यह विचार है कि पाठक पुस्तक को मात्र अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के आरम्भिक रूप (जिसमें मात्र भाषा शिक्षण और अनुवाद की गणना की गई अथवा जिसे सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान के अनुप्रयोग के रूप में माना गया) से जोड़कर न देखें वरन् विकास के विविध चरणों को पार कर, दृढ़ नींव पर खड़े एक ऐसे अध्ययन विषय के रूप में जानें, समझें जो निरन्तर परिवर्तनशील विषयों (समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, शिक्षा आदि) का सहविन्यास है और इन विषयों के साथ हुई पारस्परिक अन्तःक्रिया से ही इसकी विविध शाखाओं का विकास हुआ है।

पुस्तक के टंकण का उत्तरदायित्व पूर्ववत् मेरे अनुज तुल्य श्री कृष्णवेश पाण्डे (अधिष्ठाता, लेज़र ग्राफिक्स) ने उठाया, मैं उनकी आभारी हूँ। अविराम प्रकाशन के अधिष्ठाता श्री रमेश शर्मा जी ने प्रकाशन में जो रुचि और तत्परता दिखाई उसके लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं। परिवार जनों के सहयोग पर टिप्पणी कर मैं उनके गुरुत्व को कम नहीं करना चाहती हूँ।

—डॉ. कविता रस्तोगी

विषयानुक्रम

1.0 अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

1.1 भाषा

भाषा एक प्रमुख सम्प्रेषण माध्यम है जो नितान्त मानवीय विभूति है। सैद्धान्तिक दृष्टि से सम्प्रेषण का सम्बन्ध किसी प्राणी समूह में पारस्परिक सम्बन्धों के उत्प्रेरक कारकों एवं उनकी अभिव्यक्ति से लिया जाता है और सम्प्रेषण को बहुधा इस प्रकार परिभाषित किया जाता है—जब कोई वस्तु या प्राणी गतिशील होकर किसी अन्य वस्तु या प्राणी को गतिशील करे तो मध्य में घटित प्रक्रिया सम्प्रेषण कहलाती है। यह विशेषता मानव में ही नहीं वरन् मानवेतर प्राणियों में भी प्राप्त होती है। विभिन्न मानवेतर प्राणी भिन्न-भिन्न प्रकार से सम्प्रेषण करते हैं। जहाँ हिरन की एक विशेष चीख उसके समूह के अन्य साथियों को खतरे का आभास कराती है, वहाँ मधुमक्खी का विशिष्ट प्रकार का नृत्य अन्य मधुमक्खियों को यह सूचना देता है कि वहाँ से पुष्प-पराग कितनी दूरी पर उपलब्ध है, किन्तु इन प्राणियों में मूलप्रवृत्तियाँ—क्षुधा, हर्ष, भय, कामेच्छा आदि, सम्प्रेषण के उद्‌भावक रूप में कार्य करती हैं। यही कारण है कि अनन्तकाल से ये प्राणी एक ही प्रकार से सूचना-प्रसारण एवं अभिव्यक्ति कर रहे हैं तथा एक प्रजाति के समस्त पशु-पक्षी समान ध्वनिक एवं कायिक संकेतों और सूचना-व्यवस्था का प्रयोग करते हैं। अस्तु कह सकते हैं कि इनका सम्प्रेषण अनियंत्रित, सहजगत्यात्मक एवं मूल प्रवृत्तिजन्य होता है।

मानवीय एवं मानवेतर सम्प्रेषण में पर्याप्त भिन्नता होती है। सामाजिक प्राणी होने के कारण मानव पारस्परिक सम्पर्क एवं सहयोग के लिए कई सम्प्रेषण, माध्यमों का प्रयोग करता है। कोई भी व्यक्ति दूर खड़े मित्र को ताली, चुटकी या सीटी आदि बजाकर बुला सकता है अथवा निकट खड़े व्यक्ति का ध्यान स्पर्श द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर सकता है, किन्तु इन सम्प्रेषण-माध्यमों का क्षेत्र सीमित होता है। मानव की समस्त अभिव्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति इन साधनों द्वारा नहीं होती है।

अभिव्यक्ति के इन विविध साधनों में सर्वाधिक सशक्त माध्यम भाषा है, जो मुखोच्चारित ध्वनियों द्वारा निर्मित होती है। अपने दैनन्दिन कार्य-व्यवहार का एक बड़ा भाग मानव इसके द्वारा सम्पादित करता है। मानव जीवन आज जिस विकसित अवस्था में है, उसको सम्भव बनाने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान भाषा का है। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए प्रसिद्ध भाषा दार्शनिक विल्हेल्म फॉन हुम्बोल्ड ने कहा है—मानव भाषा के कारण ही मानव है, मानव बनने के लिए उसे भाषा का आविष्कार करना पड़ा। इस प्रकार भाषा ही मानव को अन्य प्राणियों से भिन्न प्रतिपादित कर अलग धरातल प्रदान करती है। मानवीय सम्प्रेषण का यह साधन वैविध्यपूर्ण एवं जटिल है तथा देशकाल एवं परिस्थिति, आबद्ध नहीं होता है। मानव-शिशु में भाषार्जन की जन्मजात क्षमता होती है और निश्चित अवस्था आने पर वह अपने निकटतम परिवेश में भाषार्जन करता है, अस्तु मानवीय भाषा कोई एकांगी प्रक्रिया न होकर एक बहुदिशिक अन्तर्प्रक्रिया का परिणाम है।

भाषा की स्वरूप-रचना मानवीय वाग्ध्वनियों (speech sounds) द्वारा होती है। ध्वनि-उत्पादन के अन्य माध्यम भाषा की श्रेणी में परिगणित नहीं होते हैं। यद्यपि मानव बहुविध ध्वनियों के उच्चारण में सक्षम है, किन्तु मानव उच्चारण सम्भूत ध्वनियों में से कुछ ध्वनियाँ ही भाषिक ध्वनियों के रूप में प्रयुक्त होती हैं। इन ध्वनियों में से कतिपय निश्चित संख्यक ध्वनियों का चयन भाषा विशेष द्वारा किया जाता है। यह भाषा विषयक सार्वभौमिक (universal) तथ्य है। इन भाषिक ध्वनियों के विविध निश्चित क्रमों एवं संयोजनों द्वारा भाषा का स्वरूप (शब्द, पदबन्ध, वाक्य आदि) निर्मित होता है और मानव जिसके द्वारा चतुर्दिक परिवेश में उपस्थित वस्तुओं, पदार्थों, गुणों, क्रियाओं आदि का नामांकन करता है।

संरचना द्वैत (duality of structure) या द्विपक्षीयता भाषा की दूसरी प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। भाषा की प्रत्येक इकाई (रूप, पदबन्ध, वाक्य आदि) द्विपक्षीय होती है इनका निर्माण जहाँ एक ओर कुछ निश्चित स्वनों/ध्वनियों से होता है वहाँ दूसरी ओर ये इकाइयाँ विशिष्ट अर्थ को प्रकट करती हैं, उदाहरणार्थ हिन्दी भाषा की निम्न भाषिक इकाइयाँ देखें—

कमल (रूप)

लाल कमल (पदबन्ध)

तालाब में लाल कमल खिले हैं। (वाक्य)

उपर्युक्त भाषिक इकाइयाँ एक विशिष्ट स्वन्यात्मक स्वरूप को प्रकट करती हैं जो उन्हें अन्य भाषिक इकाइयों से भिन्न अस्मिता प्रदान करता है (जैसे समान स्वनों द्वारा निर्मित होने पर भी 'कमल' और 'कलम' में भिन्नता है) वहीं ये सभी इकाइयाँ श्रोता या पाठक तक विशिष्ट अर्थ भी प्रेषित करती हैं। भाषिक इकाइयों द्वारा निर्मित भाषा की यही विशेषता उसकी द्विपक्षीयता कहलाती है।

यादृच्छिकता (arbitrariness) भाषा की मूलभूत विशेषता है जो भाषा वैशिष्ट्य का पर्याय है। हर भाषा का अपना एक अद्वितीय स्वरूप होता है, जो उसके प्रत्येक अंग-ध्वनि, व्याकरण और अर्थ पर लक्षित होता है। प्रत्येक भाषा विशेष मानवीय वाग्ध्वनियों में से पृथक्-पृथक् ध्वनियों का चयन करती है यथा—भारतीय भाषाओं में प्राप्त महाप्राण स्पर्श एवं मूर्धन्य ध्वनियाँ यूरोपीय भाषाओं में नहीं प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी के तालव्य सघोष संघर्षी व्यंजन (जैसे pleasure शब्द का तीसरा व्यंजन) हिन्दी में नहीं मिलते हैं। ध्वनि-संयोजन, शब्द संयोजन एवं वाक्य में पदक्रम के साथ-साथ यह विशेषता शब्द-अर्थ सम्बन्ध में भी परिलक्षित होती है। परिणामतः प्रत्येक भाषा जागतिक उपादानों, क्रियाओं आदि का नामांकन अपने-अपने ढंग से करती है यथा—हिन्दी-कुत्ता, संस्कृत-श्वान, अंग्रेजी-dog, जर्मन-hund, रूसी-sabaca। प्राणी एक होने पर भी हर भाषा में भिन्न शब्द का प्रयोग मिलता है। यह तथ्य भाषा की यादृच्छिकता का द्योतक है, क्योंकि इसका कोई तार्किक आधार नहीं है कि किस कारण एक प्राणी विशेष हिन्दी वक्ता द्वारा 'कुत्ता' कहलाता है, अंग्रेजी भाषा भाषी उसी को 'dog' नाम देता है।

भाषा में अपसरणात्मकता (displacement) का गुण मिलता है। अपसरण से तात्पर्य सन्दर्भ एवं परिस्थिति निरपेक्ष होना है। जहाँ मानवेतर प्राणियों का सम्प्रेषण अनिवार्यतः परिस्थिति-आबद्ध होता है, वहाँ भाषिक सम्प्रेषण के लिए यह बाध्यता नहीं है। हम अतीत एवं भविष्य दोनों के विषय में बात कर सकते हैं तथा उत्प्रेरक परिस्थिति के न होते हुए भी परिस्थिति की चर्चा कर सकते हैं अर्थात् किसी प्रकार का दुःख न होने पर भी हम दुःख-दर्द की भाषिक अभिव्यक्ति कर सकते हैं। इतिहास, साहित्य तथा अन्य ज्ञान-विज्ञान के विविध रूपों का सृजन भाषा की इसी विशेषता का प्रतिफल है। अस्तु कह सकते हैं कि मानवीय भाषा सन्दर्भ से हटकर भी प्रयुक्त हो सकती है तथा उद्भावक परिस्थिति के अभाव में भी उसका पुनः प्रयोग किया जा सकता है।

भाषा एक सामाजिक (social) विभूति है। भाषा एवं समाज सिक्के के दो पार्श्वों की भाँति एक दूसरे से सम्पृक्त एवं आद्यान्तः अन्योन्याश्रित हैं। मानव को चलने, खाने

आदि की भाँति बोलने की क्षमता प्रकृत्या प्राप्त है किन्तु इस क्षमता द्वारा भाषार्जन एवं प्रयोग किसी सामाजिक परिवेश में ही सम्भव है। शिशु जन्म चाहे जिस समाज में ले भाषा वही अर्जित करेगा जहाँ उसका लालन-पालन होगा। समाज से भाषा प्राप्त कर मानव उसका प्रयोग समाज में ही करता है। इस प्रकार भाषा की उद्भावना व प्रयोग दोनों समाजाश्रित हैं। ये सामाजिक परिस्थितियाँ जहाँ भाषा को जन्म देती हैं, वहीं इनकी पूर्ण अभिव्यक्ति एवं रूपायन भाषा द्वारा होता है इसीलिए भाषा को समाज का दर्पण कहते हैं। नृविज्ञानविद् एवं समाजशास्त्री मानव एवं समाज के अध्ययन हेतु भाषा को ही मुख्य साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। भाषा एवं समाज बहुविध सम्बन्धों में आबद्ध होकर विविध भाषिक एवं सामाजिक आयामों की उद्भावना करते हैं। किसी समाज के सदस्य भाषा के साथ-साथ इसके माध्यम से परम्परा से प्राप्त संस्कृति के समस्त पक्षों को भी अन्तरीकृत करते हैं। वर्तमान पीढ़ी भावी पीढ़ी को सामाजिक बन्धन, विश्वास, मान्यता, रीति, कुरीति आदि से परिचित कराती है, अतः भाषा पारस्परिक होती है। सामाजिक एवं परम्परागत उपादान होते हुए भी भाषा किसी व्यक्ति को जन्म से स्वतः प्राप्त नहीं होती। मनुष्य सप्रयास यत्न करके भाषा सीखता है अर्थात् वह वंशानुक्रम से भाषा नहीं प्राप्त करता वरन् यह एक अर्जित उपादान है। अर्जन से लेकर भाषागत परिष्कृति और दक्षता के लिए उसे सतत प्रयत्न करना पड़ता है। लेकिन आधुनिक भाषाविद् चॉम्स्की ने प्रत्येक शिशु में अन्तर्निहित भाषाज्ञान की कल्पना की है। निस्सन्देह शिशु में भाषा सीखने की असाधारण शक्ति और क्षमता होती है लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वह पहले से ही कोई भाषा जानता है। कह सकते हैं कि शिशु में भाषा अधिग्रहण एवं धारण की शक्ति होती है, जिसके सहारे उसके लिए भाषा सीखना कठिन नहीं होता।

वक्ता एवं श्रोता दोनों की उपस्थिति भाषा का अनिवार्य गुण है। सम्प्रेषण के समय इनकी स्थिति परिवर्तित होती रहती है। वक्ता श्रोता बन जाता है और श्रोता वक्ता तथा इस चक्र के मध्य भाषा घटित होती है। भाषा की इस विशेषता को विनिमेयता (interchangeability) की संज्ञा देते हैं। इतर प्राणियों के सम्प्रेषण में श्रोता की अनिवार्यता नहीं होती है यथा--किसी अनिष्ट का आभास होते ही बन्दर विशेष आवाज करता है चाहे उसका श्रोता हो या न हो। मानवीय एवं सामाजिक विभूति होने के कारण भाषा सतत प्रवाहमान है अर्थात् भाषा गत्यात्मक (dynamic) होती है। मानव तथा समाज की आवश्यकतानुसार भाषा के स्वरूप में अत्यन्त मन्थर गति से परिवर्तन होता रहता है। समाज के परिवर्तित मूल्यों, नवीन अन्वेषणों, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक

प्रभावानुसार भाषा अपने को परिवर्तित करती है। यही नहीं अनेक आन्तरिक कारण यथा—अपूर्ण अनुकरण, अपूर्ण श्रवण, अज्ञान, अनुकरण की प्रवृत्ति, मनोवैज्ञानिक तथ्य आदि भी भाषा के स्वरूप में परिवर्तन लाते हैं।

प्रत्येक भाषा में कुछ सीमित ध्वनियों से अनेक शब्द तथा उनसे असीमित वाक्य निर्मित होते हैं। इसे भाषा की उत्पादकता (productivity) कहते हैं जो उसका आन्तरिक एवं विशिष्ट गुण है। भाषा की यह उत्पादकता भाषाभाषी को अपने अनुभव क्षेत्र में आगत समस्त वस्तुओं, पदार्थों, अनुभवों एवं क्रियाओं के सम्बन्ध में वार्तालाप की क्षमता प्रदान करती है एवं उसके भाषा प्रयोग की निरन्तर वृद्धि का कारण होती है। भाषा की यह उत्पादकता उसमें घटित पुनरावर्तिता (redundancy) द्वारा भी रूपायित होती है। जिसके परिणामस्वरूप भाषा सीखने पर व्यक्ति कुछ शाब्दिक एवं वाक्यीय रचनाओं द्वारा अपरिमित वाक्यों की उद्भावना और सृजन में समर्थ होता है। उदाहरणार्थ—

गाय है।

एक गाय है।

एक काली गाय है।

एक काली नुकीले सींग वाली गाय है।

एक काली नुकीले सींग वाली गाय है जिसने मेरी बिल्ली को मारा था, जो मेरे घर के चूहे मारती थी।

हिन्दी के इस वाक्य को अभी और बड़ा बनाया जा सकता है। किसी भाषा संरचना से परिचित व्यक्ति ऐसे नवीन वाक्यों के सृजन व अवबोधन में समर्थ होता है जिनका प्रयोग पहले उसके द्वारा कभी नहीं किया गया हो। इस प्रकार भाषा की रचनाशीलता के कारण मानव सीमित ध्वनियों से अनेक शब्द एवं अनेकानेक शब्दों से असंख्य वाक्य बनाता है। अस्तु भाषा सीमित साधनों का असीमित व अपरिमित प्रयोग करती है। भाषा सीखने का अर्थ है भाषा के नियमों को सीखना। भाषा के नियम सीमित होते हैं जिन्हें सीख कर वक्ता असीमित वाक्यों की रचना कर सकता है।

1.2 भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान शब्द दो शब्दों के संयोग से निर्मित होता है—भाषा एवं विज्ञान।

भाषा का स्वरूप स्पष्ट करने के पश्चात विज्ञान पर विचार करना आवश्यक है। ज्ञान दो प्रकार का होता है—नैसर्गिक एवं अर्जित। नैसर्गिक ज्ञान स्वतः सिद्ध है तथा बिना प्रयास के प्राप्त हो जाता है जबकि अर्जित ज्ञान सप्रयास निश्चित और नियंत्रित परिस्थिति में सीखा जाता है। पूर्व चर्चा के आधार पर कह सकते हैं कि भाषा एक अर्जित उपादान है जिसे मानव समाज द्वारा प्राप्त करता है। अर्जित ज्ञान को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—प्रतिभा प्रधान एवं बुद्धि प्रधान। इनमें प्रथम विकल्पात्मक, आत्मनिष्ठ तथा देशकाल आबद्ध होता है और द्वितीय विकल्पहीन, वस्तुनिष्ठ, सार्वकालिक व अनुभवाश्रित होता है। विभिन्न कलाएँ प्रथम वर्ग में आती हैं और विज्ञान की गणना द्वितीय वर्ग में होती है।

विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान जो अकाट्य व अतर्क्य होने के साथ-साथ सार्वभौमिक व सार्वकालिक होता है। भाषाविज्ञान में प्राप्त निम्नांकित विशेषताएँ उसे भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन बनाती हैं—

भाषाविज्ञान अनुभवाश्रित (empirical) अध्ययन है। यह भाषा को भौतिक घटना के रूप में स्वीकार करता है और मूर्त, प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियगोचर तथ्यों तथा लक्षणों के आधार पर भाषा का वर्णन, विश्लेषण करता है। सामाजिक उपादान होने के कारण भाषा सामाजिक सन्दर्भों व प्रयोगों से घनिष्ठतः सम्पृक्त होती है, जिनका वर्णन अनुभव के आधार पर भाषाविज्ञान द्वारा किया जाता है। भाषाविज्ञान मूर्त एवं रूपात्मक आधारों को ग्रहण करता है तथा अमूर्त, मायावी, इन्द्रियातीत एवं मानसिक आधारों का साग्रह वर्जन करता है, अतः इसमें तथ्यपरकता मिलती है।

किसी भी अध्ययन का दृष्टिकोण व्यक्तिनिष्ठ (subjective) और वस्तुनिष्ठ (objective) दो प्रकार का होता है। जब अध्ययनकर्ता की रुचियाँ, अभिरुचियाँ आदि उसके अध्ययन को प्रभावित करें तो उसे व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन कहते हैं और जब अध्ययनकर्ता अपनी पसन्द, नापसन्द को प्राथमिकता न दे और अध्ययन के केन्द्र में अध्येय वस्तु को रखे, ऐसा अध्ययन वस्तुनिष्ठ कहलाता है। चूँकि भाषाविज्ञान भाषा का अध्ययन विश्लेषण भाषिक आधारों पर करता है और भाषा में प्राप्त लक्षणों, विशेषताओं के आधार पर भाषा का वर्णन विश्लेषण किया जाता है, किसी अन्य भाषा को आदर्श मानकर उसकी विशेषताओं को आरोपित नहीं करता है, अतः इसका अध्ययन दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ होता है, जो स्वगत धारणा एवं प्रतीति का निराकरण कर भाषा सम्बन्धी तथ्यों पर प्रकाश डालता है।

भाषाविज्ञान एक वर्णनात्मक विज्ञान है जो सामाजिक सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में भाषा को स्वीकार करते हुए उसकी स्वरूपगत विशेषताओं के विश्लेषण एवं वर्णन में प्रवृत्त होता है। वर्णन ही इसका साध्य है। भाषा के आदर्श, साधु अथवा परिनिष्ठित रूप के प्रतिपादन अथवा प्रस्थापन में इसकी कोई रुचि नहीं होती। साथ ही इसका उद्देश्य कोई नवीनतम खोज या अन्वेषण करना नहीं है अपितु भाषा के कलेवर में जो कुछ है उसका वर्णन, विश्लेषण मात्र है।

वैज्ञानिकता के आग्रह के परिणामस्वरूप भाषाविज्ञान भाषा विश्लेषण के लिए निश्चित पद्धति का प्रयोग करता है। यह भाषा के कलेवर में प्राप्त तत्त्वों व इकाइयों की समान विशेषताओं का आकलन कर उनके समानधर्मी वर्ग एवं उपवर्ग बनाता है और वर्ग के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का तथ्यपरक वर्णन करता है। आवश्यकतानुरूप विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों एवं यंत्रों की सहायता ग्रहण कर उनके गणितात्मक फलों का उपयोग करता है। भाषाविज्ञान वैज्ञानिक निश्चित एवं अन्तःसंगति की पूर्ति हेतु निश्चित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग करता है, जिससे सभी महत्त्वपूर्ण शब्द निश्चित अर्थ में प्रयुक्त हों।

स्पष्ट है कि भाषाविज्ञान भाषा मात्र के अध्ययन का विज्ञान है और उपर्युक्त विशेषताओं के कारण इसे वैज्ञानिक अध्ययन कहना समीचीन होगा। चूँकि भाषा विकासमयी, विश्लेषण सापेक्ष और यादृच्छिक है अतः इसका विज्ञान भी स्थिर गतिहीन नहीं वरन् गत्यात्मक, परिवर्तनशील विज्ञान है।

अध्ययन के अन्य विषयों की तुलना में भाषाविज्ञान एक नवीन विषय कहा जा सकता है, जिसका अध्ययन-अध्यापन विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ही प्रारम्भ हुआ और साथ ही जुड़ गई कुछ भ्रामक धारणाएँ, जो आज इतनी दीर्घ अवधि के बाद भी व्यापक तौर पर फैली हैं। प्रथमतः साहित्य व भाषाविज्ञान की सम्यक् प्रतीति, द्वितीय-भाषाविज्ञान का सम्बन्ध एकाधिक भाषाओं के ज्ञान से है। किन्तु वास्तविकता यह है कि जहाँ साहित्य का सम्बन्ध किसी विशेष भाषा से होता है यथा–हिन्दी साहित्य, उर्दू साहित्य, अंग्रेजी साहित्य वहीं भाषाविज्ञान का सम्बन्ध भाषा सामान्य के अध्ययन से है। भाषा सामान्य अर्थात् भाषा का वह रूप जो मानव के मस्तिष्क में नियम समुच्चय के रूप में अवस्थित रह भाषा विशेष को नियंत्रित करता है। इस भिन्नता को प्रदर्शित करने के लिए फ्रेंच, इतावली, स्पेनिश आदि भाषाएँ दो पृथक्-पृथक् शब्दों का प्रयोग करती हैं जो किसी सीमा तक संस्कृत की वाक् और भाषा की अवधारणा के समतुल्य हैं उदाहरणार्थ–

फ्रेंच	langue	-	parole
इतावली	linguaggio	-	lingua
स्पेनिश	linguaje	-	lingua

इस तालिका के प्रथम शब्द भाषा के मानसिक अमूर्त रूप का प्रतिरूपण करते हैं जबकि parole, lingua आदि उसके उच्चरित रूप से सम्बन्ध रखते हैं। ध्यातव्य है कि साहित्यिक अध्ययन व्यक्तिनिष्ठ होता है। अध्ययनकर्ता की रुचि, अभिरुचि, योग्यता उसके अध्ययन-विश्लेषण को प्रभावित करते हैं जबकि भाषा वैज्ञानिक अध्ययन वस्तुनिष्ठ होता है। अध्ययनकर्ता अपनी अध्येय वस्तु में प्राप्त समस्त विशेषताओं का उद्घाटन, विश्लेषण व वर्णन करता है। यह अवश्य है कि जहाँ अन्य अध्ययन विषयों में अध्येय वस्तु एवं अध्ययन माध्यम भिन्न होता है वहीं भाषाविज्ञान में अध्येय वस्तु तथा माध्यम दोनों एक हैं और यह परिस्थिति भाषा अध्ययन के क्षेत्र में कुछ कठिनाई उत्पन्न करती है, जिसके निराकरण के लिए भाषाविज्ञान निरूपक भाषा (meta language) का प्रयोग करता है। स्पष्ट है कि अध्ययन का वह विषय जो भाषाओं को वर्गीकृत करें जिसमें भाषा संचरना अर्थात् भाषा की स्वन्यात्मक, व्याकरणिक एवं अर्थ सम्बन्धी व्यवस्था का सूक्ष्म वर्णन किया जाए, भाषाविज्ञान कहलाता है। आधुनिक अध्ययन परम्परा में इसे विज्ञान से विलग कर 'मानविकी' शीर्षक के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है।

1.3 भाषाविज्ञान तथा अन्य ज्ञान-विधाएँ

ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है। अध्ययन के विविध विषय उस व्यापकता का अपने विषयानुसार अवलोकन कर, वर्णन करते हैं। गणित, भौतिकशास्त्र, समाजशास्त्र, भूगोल आदि नामों से विषय-विभाजन शुद्ध अध्ययन की दृष्टि से है। वास्तव में हर विषय दूसरे से सम्बन्धित होता है। उच्च स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों में पराच्छादन हो, सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है। भाषाविज्ञान की विषय वस्तु-भाषा, अध्ययन की प्रत्येक धारा से सम्बन्धित है क्योंकि हर विषय की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है। जड़चेतनमय जगत के सभी उपादान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस मानवीय विभूति से जुड़े हैं।

जीवविज्ञान : जीव विज्ञान प्राणियों का अध्ययन करता है और प्राणी की एक विशेषता सम्प्रेषण है। मानवीय-सम्प्रेषण के कई साधन हैं जिनमें से मुख्य भाषा है।

मानव के अतिरिक्त सामूहिक जीवन व्यतीत करने वाले अन्य प्राणी भी सम्प्रेषण करते हैं। जीव विज्ञान ही हमें अन्य प्राणियों की सम्प्रेषण-व्यवस्थाओं से परिचित कराता है जिनके आधार पर मानवीय-सम्प्रेषण की भिन्नता व स्वरूप को अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

भौतिक विज्ञान : विभिन्न भौतिक पदार्थों का अध्ययन इसका क्षेत्र है। ध्वनि एक भौतिक उत्पादन है, जिसके द्वारा भाषा का स्वरूप निर्मित होता है। ध्वनि की प्रकृति, गुण और विशेषताओं का अध्ययन भौतिकी के अन्तर्गत किया जाता है, इसकी दृष्टि में किसी अन्य ध्वनि एवं भाषिक ध्वनि में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं होता है। भाषा की आधारिक इकाई होने के कारण भाषाविज्ञान ध्वनि का सम्यक् विश्लेषण करने में तत्पर रहता है और इस कार्य में भौतिक विज्ञान उसे सहायता देता है। ध्वनि उच्चारण ही नहीं वरन् प्रसरण एवं श्रवण सम्बन्धी अध्ययन में भी भौतिकी के यंत्र एवं सिद्धान्त सहायता देते हैं। आज किन्हीं दो ध्वनियों के सूक्ष्मतम भेदों का ज्ञान पूर्ण वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सम्भव हो गया है।

शरीर-रचना विज्ञान : उच्चारण अवयव कहे जाने वाले अंग-जिह्वा, ओष्ठ, फेफड़े आदि मानव शरीर के महत्त्वपूर्ण अंग हैं, जिनका मुख्य कार्य श्वास, उच्छ्वास, भोजन ग्रहण आदि है। इन अंगों के विषय में विस्तृत सूचना शरीर-रचना विज्ञान देता है। वक्ता के वाग्दोषों-हकलाना, तुतलाना, कुछ ध्वनियों के उच्चारण की असमर्थता आदि, के संधान हेतु भाषाविद् तथा चिकित्सक साथ-साथ प्रयास करते हैं। हमारा स्नायुमण्डल कैसे वाग्व्यवहार को संचालित करता है? श्रवणेन्द्रियाँ ध्वनियों को कैसे ग्रहण करती हैं? वक्ता के आशय की सार्थकता समझ श्रोता तदनुकूल किस प्रकार प्रतिक्रिया करता है आदि प्रश्नों के समाधान इन दोनों विषयों की सहायता से ही सम्भव है।

गणित : गणित विकल्पहीन, कृत्रिम एवं निश्चित प्रतीक विधान है। विज्ञान के क्षेत्र में न जाने वाले विषय भी अपने निष्कर्षों की अभिव्यक्ति गणितात्मक शब्दावली में करते हैं क्योंकि यह निश्चित व सार्वभौमिक होती है। गणित भाषा का एक विशिष्ट रूप है। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में कोपेनहैगन सम्प्रदाय के भाषाविद् हेल्मस्लेव ने गणितात्मक शब्दावली व पद्धति का विशेष प्रयोग किया है। सम्प्रति प्रजनक एवं रूपान्तरणशील व्याकरण के अन्तर्गत सुनिश्चितता, स्पष्टता एवं संक्षिप्तता बनाए रखने के लिए गणित के अमूर्त प्रत्ययों व सूत्रों का अत्यधिक प्रयोग किया गया।

दर्शनशास्त्र : भारत व पाश्चात्य दोनों ही स्थानों पर भाषा सम्बन्धी अध्ययन का प्रादुर्भाव, मानव की अपने चतुर्दिक प्राप्त उपादानों, घटनाओं आदि के प्रति स्वाभाविक जिज्ञासा का परिणाम है और यही जिज्ञासा दर्शन के मूल में है। दर्शन मानव ज्ञान-पिपासा व चिन्तन-शक्ति का परिणाम है। चूँकि भाषा के माध्यम से विभिन्न जागतिक वस्तुओं का नामांकन किया जाता है अतः प्रारम्भ से ही मानव की जिज्ञासा नाम व पदार्थ का सम्बन्ध जानने की रही है। विभिन्न प्राच्य व पाश्चात्य चिन्तक अपनी दार्शनिक प्रमेयों व प्रस्थापना की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करते हैं। दर्शन चूँकि आनुभाविक विज्ञान नहीं है और दार्शनिक प्रस्थापनाएँ भाषा के माध्यम से ही रूपायित होती हैं अतः इन अध्ययन विषयों में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

समाजशास्त्र : समाजशास्त्र में मानव-समाज का अध्ययन किया जाता है और भाषाविज्ञान की विषय वस्तु भाषा का अर्जन इस समाज पर निर्भर करता है। समाज में निवसित होने के कारण ही व्यक्ति को भाषा की आवश्यकता होती है। समाज की सत्ता भाषा पर आश्रित होती है अतः कह सकते हैं कि समाज और भाषा सिक्के के दो पार्श्वों की भाँति हैं जिन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। साथ ही समाज की लघुतम इकाई मानव है और भाषा भी रूपायित होती है मानव द्वारा। जिस प्रकार भाषा हर भाषाभाषी को अप्रत्यक्ष रूप से बाँधे रहती है उसी प्रकार समाज भी व्यक्ति पर बन्धन लगाता है। भाषा और समाज परस्पर सम्बन्धित होने के साथ-साथ मानव रूपी कड़ी द्वारा भी घनिष्ठतः सम्पृक्त हैं। समाज की विभिन्न परिस्थितियाँ, अच्छाई-बुराई, ऊँच-नीच, सत्य-असत्य सभी भाषा में प्रतिबिम्बित होता है। समाज के विभिन्न वर्गों के अनुरूप भाषा में वर्गीय रूप प्राप्त होते हैं यथा- शिक्षित वर्ग/अशिक्षित वर्ग; प्रौढ़ वर्ग/ युवा वर्ग; उच्च वर्ग/निम्न वर्ग आदि सभी की भाषा भिन्न होती है। स्पष्ट है कि भाषा-अधिग्रहण, भाषा-प्रयोग व भाषा-परिवर्तन समाज पर निर्भर है। न तो मानव समाज के अभाव में भाषा सीख सकता है और न ही एकाकी मानव भाषा को बोल सकता है और न ही भाषा का विकास समाज के अभाव में होगा। इन दोनों विषयों के सम्मिलन से जिस शाखा का प्रारम्भ हुआ उसे समाज भाषाविज्ञान नाम दिया गया।

मनोविज्ञान : मानवीय-व्यवहार का परीक्षण, अध्ययन व विश्लेषण मनोविज्ञान का क्षेत्र है। मानवीय-व्यवहार का एक बहुत बड़ा भाग वाक्व्यवहार के रूप में घटित होता है अतः वाक्व्यवहार भी मनोविज्ञान की परिसीमा के अन्तर्गत आता है। हमारा नित्य प्रति का दैनिक वाक्व्यवहार जो हमारे परिवेश के प्रति हमारी ध्वन्यात्मक प्रतिक्रिया है, सामूहिक रूप से भाषा कहलाता है। मनुष्य के अवचेतन में भाषा एक

सामाजिक सम्पदा के रूप में अवस्थित रहती है। परिस्थिति विशेष में मनुष्य कैसे अपनी वाचिक प्रतिक्रिया निर्धारित करता है? किस प्रकार संग्रहीत घटनाओं भावों से शब्दों को सम्बन्धित करता है? कैसे इन शब्दों को वाक्यीय रचनाओं के रूप में प्रस्तुत करता है? इन तथ्यों का विवेचन मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। चूँकि ये तथ्य भाषा से भी सम्बन्धित हैं अतः भाषाविज्ञान मनोविज्ञान से सहायता प्राप्त कर इस सम्बन्ध में अध्ययन-विश्लेषण करता है। येस्पर्सन, सपीर आदि अनेक भाषाविदों ने मनोवैज्ञानिक आधार पर भाषा को परिभाषित किया। फ्रॉज बोआज़ तथा वूर्फ ने अनेक व्याकरणिक विशेषताओं को भाषाभाषी जाति के मानसिक चिन्तन से जोड़ने का प्रयत्न किया। स्वयं प्रसिद्ध अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड की प्रथम पुस्तक मनोवैज्ञानिक प्रभाव से मुक्त नहीं थी किन्तु अपने परवर्ती अध्ययनों में इन्होंने मनोवैज्ञानिक आधार का खण्डन कर, भाषाविज्ञान का स्वयत्तापूर्ण स्वतंत्र क्षेत्र सुनिश्चित किया। सम्प्रति भाषाविज्ञान एवं मनोविज्ञान के सम्बन्धों में पुनः निकटता आ गई है। प्रजनक व्याकरण के प्रणेता चॉम्स्की अपने अध्ययन का उद्देश्य भाषाभाषी की भाषिक दक्षता का उद्घाटन बताते हैं और इस दृष्टि से उन्होंने अनेक मनोवैज्ञानिक आधारों को अपनी विश्लेषण पद्धति में समाहित किया है। भाषा-अर्जन, भाषा-अधिग्रहण एवं भाषा-शिक्षण जैसे क्षेत्रों में भी मनोवैज्ञानिक आधार सहायता देते हैं। इस घनिष्ठता के फलस्वरूप भाषाविज्ञान की नवीन शाखा-मनोभाषाविज्ञान का उद्भव हुआ है।

मानवविज्ञान : मानवविज्ञान का विषय-क्षेत्र मानव से सम्बन्धित है। इसके दो उपविभाग किए जाते हैं- सांस्कृतिक मानव विज्ञान तथा शारीरिक मानवविज्ञान। प्रथम में संस्कृति का अध्ययन किया जाता है और द्वितीय का क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल के मानव उद्विकास से सम्बन्धित अभाषायी तत्त्वों का अध्ययन है। भाषाविज्ञान का सम्बन्ध सांस्कृतिक मानव विज्ञान से है क्योंकि इसमें मानवीय संस्कृति की उद्भावना एवं विकास के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है। समाज के सदस्य के रूप में मानव जो कुछ भी सीखता है वह संस्कृति है। चूँकि भाषा भी अर्जित व्यवहार है अतः इसकी गणना भी संस्कृति के अन्तर्गत होती है। समस्त अर्जित-व्यवहार के भौतिक व मानसिक दो पक्ष होते हैं। संस्कृति का भौतिक पक्ष सभ्यता का द्योतक है जबकि मानसिक पक्ष का सम्बन्ध अवधारणा, आदर्श एवं मान्यताओं से रहता है। वस्तुतः भाषा की भांति संस्कृति भी सामाजिक तथ्य है। जिस प्रकार मनुष्य भाषार्जन की प्राकृत क्षमता रखते हुए भी जन्मतः भाषाभाषी नहीं होता उसी प्रकार वह संस्कृति में जन्म लेता है, संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता है।

समाज विशेष की संस्कृति का ज्ञान जीवन के अन्य पक्षों के अतिरिक्त मुख्यतः भाषा के माध्यम से किया जा सकता है। भाषा किसी संस्कृति को समझने में बहुत सहायता देती है। इसी प्रकार भाषा के अर्थ पक्ष की सम्पूर्ण जानकारी हेतु विभिन्न भाषिक कथनों के वास्तविक सन्दर्भ का ज्ञान अनिवार्य होता है। अनेक कथन सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में रखे बिना सम्यक अर्थ की प्रतीति नहीं कराते हैं, यथा–हिन्दी में चेचक के लिए–माता, मृत शरीर के लिए–मिट्टी, निम्न वर्ग के लिए–हरिजन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इनका अर्थ सन्दर्भ के अभाव में ज्ञात नहीं किया जा सकता है। भाषायी कथनों को उनके वास्तविक सांस्कृतिक सन्दर्भ में रखना उस समय और आवश्यक हो जाता है जब भाषाविद् या नृविद् किसी दूरागत तथा अपरिचित भाषा या संस्कृति का अध्ययन कर रहा हो क्योंकि परिचित भाषा व संस्कृति के सम्बन्ध में अनेक तथ्य विद्वान स्वयं बता सकता है। संस्कृति की उपयोगिता पर सर्वप्रथम बल आंग्ल नृविद् मैलिनोवस्की ने दिया। इन्होंने पूर्वीद्वीप समूह में निवसित जातियों की संस्कृति का अध्ययन किया और अनेक ऐसे शब्दों की सूची बनाई जिनका अर्थ सांस्कृतिक परिवेश के ज्ञान के बिना समझा नहीं जा सकता है। स्पष्ट है कि भाषाविज्ञान व मानवविज्ञान/नृविज्ञान घनिष्ठतः सम्बन्धित हैं। एक मानवीय भाषा का अध्ययन करता है तो दूसरे का विषय क्षेत्र मानवीय संस्कृति है और ये दोनों अन्तःसम्बन्धित हैं।

भूगोल : किसी भूखण्ड की भौगोलिक विशेषता का प्रभाव वहाँ निवसित व्यक्तियों की सामाजिक सांस्कृतिक विचारधारा के साथ-साथ भाषा पर भी पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कोई क्षेत्र कृषि प्रधान और कोई उद्योग प्रधान होता है। कृषि प्रधान क्षेत्रों में कृषि सम्बन्धी शब्दावली व औद्योगिक क्षेत्रों में तत्सम्बन्धी शब्दों का बाहुल्य मिलता है। भाषा के प्रसार और विकास में भी भौगोलिक परिस्थितियाँ सहायक होती हैं। मैदानिक क्षेत्रों की तुलना में पहाड़ी या वन प्रदेश की भाषाओं का प्रसार कम होता है। साथ ही प्राकृतिक बाधाएँ, यथा–भूकम्प, जलप्लावन आदि कभी-कभी भाषा के परिवर्तन या भाषा के विभाजन का कारण बनती हैं। प्राकृतिक विपदाओं के कारण एक बड़ा भाषा-क्षेत्र कई छोटे-छोटे क्षेत्रों में विभाजित हो जाता है और प्रत्येक क्षेत्र में एक नवीन बोली का विकास होता है। कतिपय विद्वानों का मत है कि भौगोलिक परिस्थितियाँ उच्चारण अवयवों को भी प्रभावित करती हैं। यथा–शीत प्रधान देशों में प्रायः दन्त्य ध्वनियों (त, थ, द) के स्थान पर मूर्धन्य (ट, ण, ड) ध्वनियाँ मिलती हैं क्योंकि शीत के कारण इस प्रदेश के निवासियों का वाग्यंत्र उष्ण देशवासियों की तुलना में कम खुलता है। भाषा का अर्थ पक्ष भी भूगोल से प्रभावित होता है यथा–वैदिक काल

में उष्ट्र का अर्थ भैंसा था जो उस काल का एक उपयोगी पशु था। जब आर्य फारस की दिशा में बढ़े तो वहाँ के उपयोगी पशु ऊँट को उष्ट्र कहना प्रारम्भ कर दिया।

1.4 अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान : प्रकृति एवं स्वरूप

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि अध्ययन का वह विषय जो 'भाषा का वैज्ञानिक वर्णन-विश्लेषण' करता है भाषाविज्ञान नाम से अभिहित किया जाता है। यहाँ 'भाषा' शब्द का प्रयोग किसी विशेष भाषा के सन्दर्भ में न होकर भाषा सामान्य के लिए किया गया है। इस प्रकार भाषा की संरचना एवं उसकी आन्तरिक प्रकृति से सम्बद्ध विषय भाषाविज्ञान है जिसका उद्देश्य भाषा संरचना का वर्णन विश्लेषण कर सिद्धान्तों का निर्माण करना है। भाषाविद् के लिए भाषा साध्य भी है और साधन भी। साध्य के रूप में भाषा विश्लेष्य सामग्री है और साधन के रूप में विश्लेषण उपकरण। भाषा की आन्तरिक प्रकृति को समझने के लिए विद्वानों ने विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। किसी ने भाषा को निर्मायक घटकों का जाल कह उसकी रूपात्मकता पर बल दिया तो अन्य ने उसकी सृजनशीलता एवं प्रजनकता को रेखांकित किया। इस प्रकार भिन्न-भिन्न अन्तर्दृष्टियों के आधार पर भाषिक सिद्धान्त का निर्माण एवं सिद्धान्त प्रेरित प्रारूप द्वारा भाषा का वर्णन किया गया। इसे ही सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान नाम भी दिया गया। सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान का केन्द्र साधन/माध्यम या निरूपक भाषा होती है जिसका उद्देश्य साध्य/वस्तु भाषा से सम्बन्धित सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा उन सिद्धान्तों के आधार पर विश्लेषण प्रणाली का विकास करना है। इसके लिए भाषा विशेष से ली गई सामग्री दृष्टान्त मात्र होती है वस्तुतः सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान विश्व की समस्त भाषाओं के पीछे कार्यरत सार्वभौम नियम जानने की चेष्टा करता है। वर्णन के आधार पर निर्मित भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों का किसी लक्ष्य विशेष की प्राप्ति के लिए किया गया प्रयोग ही 'अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान' कहलाता है।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के विचारानुसार

"अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसका मुख्य लक्ष्य भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं प्रणाली के अनुप्रयोग द्वारा उन भाषायी समस्याओं का पता लगाना और उनका समाधान ढूंढ़ना है जो भाषा से इतर विषय क्षेत्रों के अनुभव से सम्बद्ध होती हैं।"

सन् 1974 में कुछ इसी प्रकार के विचार पिट कार्डर द्वारा भी व्यक्त किए गए थे--

"Applied linguistics is the utilization of the knowledge about the nature of language achieved by linguistic research for the improvement of the efficiency of some practical task in which language is a central component."

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान को एक स्वतंत्र वैज्ञानिक विषय माना जाए या यह सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान पर निर्भर एक तकनीक है इस बिन्दु पर विद्वानों में मतभेद है। जैसा कि उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि आरम्भ में विद्वानों ने इसे भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुप्रयोग के रूप में स्वीकार कर परिभाषित किया जिसकी प्रकृति क्रियात्मक होती है। परवर्ती विद्वानों का मानना है कि अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान एक स्वतंत्र शाखा है जिसकी अपनी सोच, अपना दर्शन तथा अपना सिद्धान्त है।

विकास के विभिन्न चरणों को पार करते हुए प्रत्येक अध्ययन विषय एक ऐसी स्थिति में पहुँचता है जब उस पर पुनर्चिन्तन एवं मनन की आवश्यकता होती है। वर्तमान दशक अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के जीवनकाल में उसी आवश्यकता की याद दिलाता है। आरम्भिक दिनों में कतिपय विद्वानों ने सूक्ष्म एवं बृहद् भाषिकी की चर्चा की। जिसका आधार विषयवस्तु की संकीर्णता और विस्तार था। संकीर्ण विचारधारा भाषाविज्ञान को स्वतंत्र एवं स्वायत्त विषय के रूप में स्थापित कर भाषा के स्वरूप का वर्णन एवं विश्लेषण के लिए सामान्यीकरणों का निर्माण करती है जबकि विस्तृत विचारधारा भाषार्जन, भाषा की समाज सापेक्षता, संस्कृति से भाषा की घनिष्ठता, दर्शन एवं तर्कशास्त्र से उसके जुड़ाव को स्वीकार कर सभी पक्षों पर चर्चा करती है। इस प्रकार जहाँ सूक्ष्म को सैद्धान्तिक या शुद्धतावाद के पर्याय के रूप में मानकर उस समग्रता के अध्ययन की बात की गई जो स्वनप्रक्रियात्मक, रूपरचना एवं वाक्य रचनात्मक नियमों का समुच्चय है वहाँ भाषा किस प्रकार अधिग्रहित होती है, मानव मस्तिष्क कैसे भाषार्जन करने में मानव को सहायता देता है, भाषा का साहित्यिक एवं सम्प्रेषणात्मक प्रकार्य क्या है आदि विषयों की गणना बृहद् भाषिकी के क्षेत्र में की गई और इसे ही अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान माना गया। शनैः शनैः विद्वानों में यह धारणा घर कर गई कि भाषाविज्ञान सूक्ष्म से कहीं विस्तृत है। नृविज्ञान, भूगोल, गणित, पुरातत्त्वशास्त्र आदि अध्ययन क्षेत्रों और भाषाविज्ञान के वैचारिक अवमिश्रण से ऐसी नवीन शाखाओं का विकास हुआ जहाँ यह कहना कठिन हो गया कि कहाँ एक विषय की सीमा समाप्त होती है और कहाँ से दूसरा प्रारम्भ हो रहा है।

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक विकासक्रम पर ध्यान दें तो स्पष्ट हो जाता है कि आरम्भ में इसे भाषा शिक्षण के पर्याय के रूप में देखा गया। पिड कार्डर ने अपनी पुस्तक 'Introducing applied linguistics' में इसका यही अर्थ ग्रहण किया है। 1977 के लगभग पीटर स्ट्रीवन्स ने कहा- '(it is a) multidisciplinary approach to the solution of language based problems.' पिछले कुछ दशकों से इसको संकुचित अर्थ से हटाकर भाषा प्रयोग सम्बन्धी समस्याओं से सीधे जोड़कर देखने का प्रयास किया जा रहा है। परिणामतः अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान एक विशाल क्षेत्र की दिशा में अग्रसर हो चुका है। इस प्रकार अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की प्रकृति, स्वरूप और प्रयोजन को निम्न रूप में देखा जा सकता है—

(i) यह उपभोक्ता सापेक्ष विषय है।

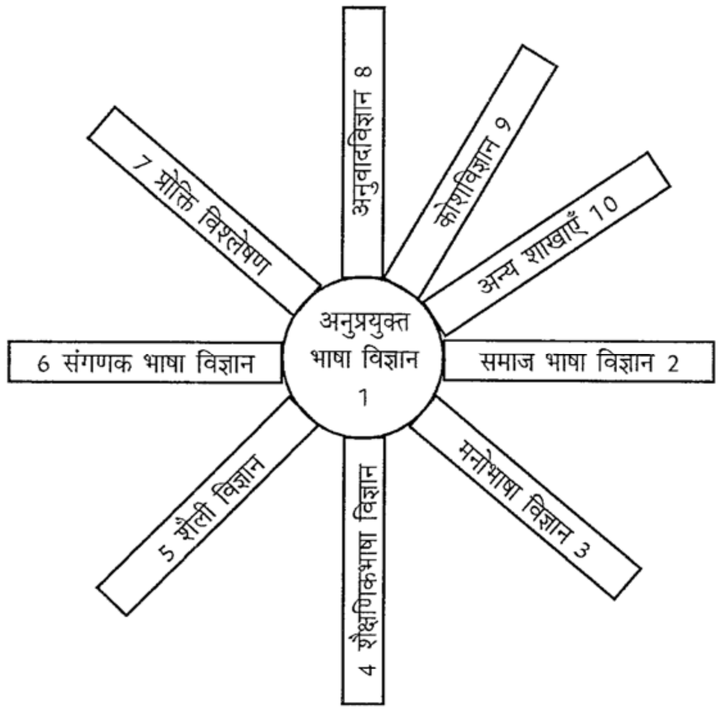
(ii) इसका उद्देश्य इस तथ्य को प्रकाशित करता है कि 'भाषा हमारे किस-किस काम आती है?

(iii) इसका सम्बन्ध मानवीय समस्याओं से होता है।

(iv) अन्तर्विषयी अध्ययन विषय होने के कारण यह एक अन्तःप्रक्रियात्मक विषय कहा जा सकता है।

(v) मानवीय एवं अन्तःप्रक्रियात्मक होने के कारण यह समस्या के स्वरूप के अनुरूप परिवर्तित होता है अतः इसको परिभाषा में बांधना कठिन है।

इस प्रकार अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान निरन्तर परिवर्तनशील विषयों का सहविन्यास (colligation) है। विविध विषयों की पारस्परिक अन्तःक्रिया प्रक्रिया से उद्भूत विषयों का परिचय ही इस पुस्तक का वर्ण्य विषय है।



चित्र- आरेख 1

समाजभाषाविज्ञान पर आधारित पुस्तक का आरम्भिक अध्याय भाषा के समाज सापेक्ष स्वरूप को रेखांकित करने के साथ साथ भाषाविज्ञान एवं समाजशास्त्र के सम्मिलन से विकसित इस शाखा का परिचय भी देता है। भाषा, बोली, मानक भाषा, प्रयुक्त आदि संकल्पनाओं की चर्चा के उपरान्त सम्पर्क के कारण भाषा में होने वाले परिवर्तनों तथा भाषा परिवृत्ति, भाषा विलुप्ति, पुनरुद्धार, नियोजन आदि का वर्णन भी इसके कलेवर में समाहित है। मनोभाषाविज्ञान नामक तृतीय अध्याय भाषा अर्जन के क्षेत्र में हुई महत्वपूर्ण प्रगति की सूचना देते हुए विकासात्मक मनोविज्ञान के स्वरूप को

स्पष्ट करता है। विभिन्न भाषिक रोगों की प्रकृति एवं लक्षण की चर्चा भी इस अध्याय में की गई है। चतुर्थ अध्याय भाषा शिक्षण की प्रमुख प्रविधियों को प्रस्तुत करता है तथा व्यतिरेकी भाषाविज्ञान एवं त्रुटि विश्लेषण का परिचय देता है। शैली विज्ञान को परिभाषित करने वाले पुस्तक के अगले अध्याय में शैली के विविध साधनों को सोदाहरण स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

छठे अध्याय के अन्तर्गत आज के उपयोगी यन्त्र कम्प्यूटर एवं भाषाविज्ञान के संबंध और भाषाविज्ञान के क्षेत्र में कम्प्यूटर की उपयोगिता को निरूपित किया गया तथा पुस्तक के अन्तिम दो अध्यायों के अन्तर्गत प्रोक्ति के स्वरूप एवं उसके विश्लेषण पर चर्चा की गई है तथा अनुवाद, उसकी प्रक्रिया, अनुवाद प्रकार, अनुवाद कार्य में आगत समस्याओं आदि बिन्दुओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। इस प्रकार भाषा के प्रयोग से जुड़े विविध पक्षों का वर्णन इस पुस्तक का वर्ण्य विषय है।

जीवन के हर क्षेत्र के लिए उपयोगी यन्त्र कम्प्यूटर का परिचय, भाषाविज्ञान में उसकी उपयोगिता, कृत्रिम मेधा, मशीनी अनुवाद आदि बिन्दुओं पर छठे अध्याय में चर्चा की गई है। वाक्य भाषिक सम्प्रेषण की महत्त्वपूर्ण इकाई है किन्तु वाक् घटना एकाधिक वाक्यों का ऐसा समुच्चय है जिसके भीतर जुड़ाव और संयोजकता कार्य करती है। वाक्य से उच्चस्तरीय इकाई प्रोक्ति एवं उसके विश्लेषण सम्बन्धी तथ्यों का परिचय अगले अध्याय में दिया गया है। आठवाँ अध्याय अनुवाद, अनुवाद प्रक्रिया, अनुवाद प्रकार, अनुवाद कार्य में आगत समस्याओं आदि पर विस्तारपूर्वक चर्चा करता है। किसी भाषा का कोश बनाना एक श्रमसाध्य कार्य है। कोश निर्माण की समस्याओं, कोश के प्रकार तथा कोश विज्ञान के विषय में नौवें अध्याय में बताया गया है। पुस्तक का अन्तिम अध्याय अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के अन्य क्षेत्रों का संक्षेप में परिचय देता है। इस प्रकार भाषा प्रयोग से जुड़े विविध पक्षों का वर्णन प्रस्तुत पुस्तक का वर्ण्य विषय है।

❊ ❊ ❊

2.0 समाज भाषाविज्ञान

2.1 प्रकृति एवं स्वरूप

भाषा वक्ता के मस्तिष्क और प्रयोक्ता के मुख में स्थित एक सामाजिक संघटना है जिसका प्रयोग मानव के सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार का एक अभिन्न अंग है। भाषा अर्जन एवं व्यवहार दोनों प्रक्रियाएँ समाज सापेक्ष हैं। भाषा के लिए समाज और समाज के लिए भाषा की अनिवार्यता एक सर्वस्वीकृत तथ्य है। जहाँ भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन, विश्लेषण भाषाविज्ञान का विषय क्षेत्र है वहाँ समाज के स्वरूप और संरचना, उसके घटकों का वर्णन समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। जब भाषा और समाज के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाए तथा समाज के परिप्रेक्ष्य में भाषा को विश्लेषित करें तो इस प्रकार का अध्ययन समाजभाषाविज्ञान (sociolinguistics) की परिसीमा में आता है। समाज में गर्हित भाषा का सम्यक् अध्यय इसका उद्देश्य है। भाषा चूंकि समाज सापेक्ष प्रतीक व्यवस्था है अतः उसकी प्रकृति में ही सामाजिक तत्त्व निहित रहते हैं। प्रतीकीकरण की प्रक्रिया एक ओर मानव और उसके बाह्य सन्दर्भों तथा दूसरी ओर मानव एवं समाज के अन्तःसम्बन्ध की अनिवार्यता से संयुक्त रहती है। किसी भाषा को सीखने का अर्थ मात्र उस भाषा के व्याकरण और शब्द कोश का ज्ञान प्राप्त करना नहीं होता वरन् कहाँ, किससे, कैसे और क्या बोलना है यह सीखना भी आवश्यक होता है, जैसे-एक हिन्दी भाषी बच्चा बातचीत करते समय अपने छोटे भाई से 'तुम आओ', माता-पिता से 'आप आइए' तथा नौकर से 'तू आ' का प्रयोग करता है। उसके इस भाषिक व्यवहार की पृष्ठभूमि में समाज के नियमों की वह आचार संहिता सक्रिय रहती है जिसे उसने समाज के सदस्य होने के नाते सीखा है। यही नहीं सम्प्रेषण का परिवेश, परिस्थिति और विषय भी भाषा चयन को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिए एक वकील और एक शेयर बाजार में काम करने वाले की भाषा में बहुत अन्तर मिलता है। अतः कह सकते हैं कि भाषा व्यवहार मात्र व्याकरण द्वारा निर्दिष्ट नहीं होता

वरन् सामाजिक सन्दर्भों एवं मूल्यों द्वारा भी निर्धारित होता है। यही नहीं कभी-कभी सन्दर्भ की जानकारी के बिना प्रेषित संदेश को समझना भी कठिन होता है। सम्प्रेषण संघटना के तात्कालिक सन्दर्भ को जानने से पूर्व उस समाज विशेष की संरचना और उसके सदस्यों के मध्य घटित अन्तःक्रियात्मक व्यवस्था के नियमों को समझना आवश्यक होता है। ये नियम हमारे व्यक्तिगत चयन का प्रश्न नहीं हैं वरन् समाज विशेष के सदस्य होने के नाते हमें इनका पालन करना पड़ता है। इस प्रकार केवल भाषा की संरचना का ज्ञान व्यक्ति को एक सफल वक्ता या श्रोता नहीं बनाता है वरन् उसे सामाजिक संरचना की व्यवस्था और जटिलता का ज्ञान भी होना चाहिए। समाजभाषाविज्ञान भाषा की इसी प्रकृति पर बल देता है और उसे सामाजिक प्रतीकों की व्यवस्था के रूप में परिभाषित करता है। अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने समाजभाषाविज्ञान को परिभाषा में बांधने का प्रयास करते हुए निम्नांकित विचार रखे। एस.के. वर्मा एवं कृष्णास्वामी के मतानुसार,

``Sociolinguistics is the study of language in relation to society; studies the interactions betweeen language as a network of relations and society as a network of relations.

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार,

"समाजभाषाविज्ञान भाषावैज्ञानिक अध्ययन का वह क्षेत्र है जो भाषा और समाज के बीच पाए जाने वाले हर प्रकार के सम्बन्धों का अध्ययन विश्लेषण करता है।"

भाषाविद् हुडसन के शब्दों में,

``We can define Sociolinguistics as the study of language in relation to society... (it) is partly empirical and partly theoretical- partly as matter of going out and amassing bodies of fact and partly of sitting back and thinking."

स्पष्ट है कि समाजभाषाविज्ञान के अन्तर्गत भाषा का अध्ययन विश्लेषण समाज से उसके अन्तःसम्बन्धों के आधार पर किया जाता है। यह मात्र भाषाविज्ञान और समाजशास्त्र के अवमिश्रण का परिणाम नहीं है और न ही समाज एवं भाषा की सह संकल्पना है। इसका उद्देश्य इस तथ्य की व्याख्या करना है कि किसी भाषा के वक्ताओं को क्या जोड़ता है और किस आधार पर उन्हें दूसरी भाषा के मातृभाषियों से विलग किया जा सकता है। उदय नारायण सिंह के मतानुसार,

``... Sociolinguistics unravels, ... the mystery and the alchemy of language synthesis and analysis".

1960 के लगभग समाजभाषाविज्ञान के क्षेत्र में तेजी से विकास हुआ। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि सामाजिक यथार्थ के रूप में भाषा का महत्त्व इस काल की देन है। वास्तव में बोलियों के अध्ययन की एक अत्यन्त प्राचीन परम्परा मिलती है। यही नहीं शब्द-अर्थ का संस्कृति से सम्बन्ध जैसे विषयों पर भी आरम्भ में चर्चा हुई। 1934 में जॉर्ज मीड ने भाषा को 'सामाजिक नियन्त्रण के साधन' के रूप में परिभाषित किया। 1949 में लिण्ड स्मिथ ने 'सामाजिक मनोविज्ञान' नामक पुस्तक में भाषा व्यवहार की मनोवैज्ञानिक भूमिका के साथ-साथ उसके सामाजिक पक्ष की भी व्याख्या की। यूरोप में भाषा के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण का प्रथम स्पष्ट संकेत आधुनिक भाषाविज्ञान के जनक सस्यूर के अध्ययन में मिलता है। इन्होंने भाषा अध्ययन के दो आयामों की चर्चा की- लॉग (langue) और परोल (parole)। 'लॉग' अमूर्त, इन्द्रयातीत नियम समुच्चय है जो सदैव एक सा रहता है जबकि 'परोल' समाज में व्यवहृत, मूर्त, इन्द्रीयगोचर भाषा व्यवहार है जो विषमरूपी है। 'लॉग' के अध्ययन विश्लेषण के लिए 'परोल' का अध्ययन करना अनिवार्य है। 'परोल' के महत्त्व को स्वीकारने पर भी सस्यूर ने भाषाविज्ञान का उद्देश्य 'लॉग' का ही अध्ययन माना। 1950 के आसपास भाषा विकल्पों पर विशेष कार्य हुए। विभिन्न सामाजिक वर्गों द्वारा प्रयुक्त शब्दावलियों, अपराध जगत आदि क्षेत्रों पर अमरीकी विद्वानों ने शब्दकोश तैयार किए। गुप्त भाषाओं की संरचना, क्रियोल भाषाओं की संरचनात्मक विशेषताओं पर अनेक शोध किए गए। 1957 में प्रजनक व्याकरण के संस्थापक, भाषाविज्ञान के क्षेत्र में नवीन क्रान्ति लाने वाले चॉमस्की ने भी सस्यूर की भाँति भाषिक क्षमता (competence) और भाषिक व्यवहार (performance) नामक पारिभाषिक युग्मों की संकल्पना प्रस्तुत की। भाषिक क्षमता व्यक्ति के मस्तिष्क में पूंजीभूत नियमों का एक समुच्चय है जिसे उसका भाषा ज्ञान कह सकते हैं और जिसकी सहायता से वह भाषा व्यवहार (नवीन वाक्यों को बोलना और समझना) करता है। भाषा व्यवहार, भाषिक ज्ञान का किसी निश्चित स्थान और समय पर किया गया निश्चित प्रयोग है। चॉमस्की ने भी भाषिक क्षमता को ही अपने अध्ययन का लक्ष्य बनाया। समाजभाषाविज्ञान ने भाषिक क्षमता के स्थान पर 'सम्प्रेषण क्षमता' (communicative competence) को अपने अध्ययन का क्षेत्र चुना। भाषिक व्यवहार के सामाजिक निर्धारक, वक्ता-श्रोता के अन्तःसम्बन्ध आदि इसके अन्तर्गत आते हैं। समाज में प्रभावशाली ढंग से सम्प्रेषण

के लिए वक्ता को किन बिन्दुओं का ज्ञान आवश्यक है, उसे ही चॉमस्की सम्प्रेषण क्षमता का नाम देते हैं।

पिछले कुछ दशकों से समाजभाषाविज्ञान के समानान्तर 'भाषा का समाजशास्त्र' (sociology of language) नामक संकल्पना की भी चर्चा हो रही है। किसी सामाजिक समुदाय की भाषिक अभिवृत्ति एवं अस्मिता, भाषा का मानक स्वरूप, राष्ट्रभाषा की व्यवस्था एवं आवश्यकता, भाषा के सामाजिक स्तर तथा भेद, बहुभाषिकता के सामाजिक आधार आदि अनेक विषय समाजभाषाविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में आते हैं। इन्हीं विषयों का विश्लेषण एवं व्याख्या जब भाषिक के स्थान पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के आधार पर की जाए तब वह 'भाषा का समाजशास्त्र' कहलाता है। स्पष्ट है कि इसके अन्तर्गत शोधकर्ता समाज का अध्ययन भाषा से उसके संबंधों के आधार पर करता है। वास्तव में देखा जाए तो दोनों के लक्ष्य भिन्न-भिन्न हैं। यदि शोधकर्ता की रुचि भाषा एवं भाषिक संरचनाओं के वर्णन विश्लेषण में है तो समाजभाषाविज्ञान उसका अध्ययन विषय कहा जाएगा किन्तु यदि शोधकर्ता अपने अध्ययन के केन्द्र में समाज एवं सामाजिक व्यवस्थाओं को रखता है तो यह 'भाषा का समाजशास्त्र' से सम्बन्धित विषय होगा। फिशमैन के शब्दों में,

``Sociology of language examines the interaction between... the use of language and the social organization of behaviour."

भाषाविद् हुडसन दोनों के लक्ष्य भिन्न मानते हुए उनके मध्य प्राप्त समानता की स्थिति को स्वीकार करते हैं।

समाजभाषाविज्ञान भाषा को सामाजिक प्रतीकों की सम्प्रेषण व्यवस्था के रूप में देखता है। उसके अनुसार भाषा एक ऐसा अन्तःक्रियात्मक प्रक्रम है जिसका प्रयोग मानव विविध सन्दर्भों में उपकरण के रूप में अन्तर्वैयक्तिक तथा समाज-सांस्कृतिक व्यवहार के लिए करता है। यह भाषा का अध्ययन भाषा के लिए नहीं वरन् सम्प्रेषण के लिए करता है। कतिपय विद्वान इसे आंशिक रूप से सैद्धान्तिक और आंशिक रूप से अनुप्रयुक्त मानते हैं। समाजभाषाविज्ञान का उद्देश्य वास्तविक एवं सम्भावित सन्दर्भों में किए गए भाषा प्रयोग का विश्लेषण एवं वर्णन करना है अतः समाजभाषाविद् भाषा के सभी रूपों पर ध्यान देता है फिर चाहे वे सन्दर्भ बद्ध हो या सन्दर्भ मुक्त। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से वह भाषा सम्बन्धी सामान्यीकरण प्रस्तुत करने के लिए मानकीकरण, नियमितिकरण एवं असंदर्भीकरण का प्रयोग करता है क्योंकि भाषा न तो

विकल्पहीन और एकरूप होती है और न ही कोई भाषिक समुदाय पूर्णतः समरूपी और आदर्श। ऐसा समाज और भाषा दोनों ही काल्पनिक होंगे। एक यथार्थवादी समाज विविधताओं से पूर्ण विजातीय संसार होता है जो सदैव परिवर्तन की अवस्था में रहता है। एक वास्तविक विषम रूपी भाषा इसी यथार्थवादी जगत में रहने वाले लोगों के अनुभव एवं भावों को व्यक्त करती है। कह सकते है कि भाषा एवं समाज एक दूसरे के साथ इतनी जटिलता से गुँथे हैं कि एक के अभाव में दूसरे का अध्ययन सम्भव नहीं है और इनके सम्मिश्रण से समाजभाषाविज्ञान के विषय क्षेत्र का विकास होता है।

ध्यान रहे कि जहाँ एक भाषाविद् का उद्देश्य यह ज्ञात करना है कि–

- भाषा के प्रमुख घटक कौन से हैं?
- बृहत्तर इकाइयों के निर्माण और प्रजनन में इन घटकों की क्या भूमिका है?
- इन घटकों की व्यवस्था का भाषिक सम्प्रेषण व्यवस्था में क्या स्थान है?

वहाँ एक समाजशास्त्री निम्नलिखित प्रश्नों के समाधान खोजता है–

- समाज के प्रमुख घटकों का स्वरूप क्या है?
- घटकों द्वारा निर्मित बृहत्तर इकाइयाँ कौन-कौन सी हैं?
- सामाजिक व्यवहार में इन घटकीय व्यवस्थाओं का योगदान क्या है?

इन दोनों से इतर एक समाजभाषाविद् वास्तविक भाषा और यथार्थवादी समाज का अध्ययन विश्लेषण कर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करता है–

- रूपात्मक एवं समाज-सांस्कृतिक संघटना का सम्मिश्रण कैसे होता है?
- सामाजिक सम्बन्ध एवं व्यवस्थाएँ किस प्रकार भाषा व्यवस्थाओं को निश्चित स्वरूप प्रदान करती हैं?
- भाषा अभिरचनाएँ किस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों और व्यवस्थाओं को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती हैं?

स्पष्ट है कि भाषा और समाज के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध मिलता है। भाषा समाज में जन्म लेती है और समाज ही उसका व्यवहार क्षेत्र है। यही नहीं भाषा रहित समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। विविध भाषिक समुदायों के निवासी इस दृश्य जगत का अपने-अपने ढंग से प्रत्यक्षीकरण करते हैं, भिन्न-

भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं और इस जगत के विषय में उनकी अलग-अलग धारणाएँ और विचारधाराएँ हैं जिनकी अभिव्यक्ति विभिन्न भाषाओं की संरचनात्मक व्यवस्था में परिलक्षित होती है। यही नहीं एक ही भाषा-भाषी समुदाय में रहने और समान भाषा का प्रयोग करने वाले भी सदैव एक प्रकार से भाषा नहीं बोलते हैं। एक ही बात/भाव को एक ही भाषा में भिन्न-भिन्न तरह से अभिव्यक्त किया जा सकता है, जैसे–

(i) कितना बजा है?

(ii) क्या समय हुआ है?

(iii) तुम्हारी घड़ी कितना समय बता रही है?

(iv) बेटा, देखो जरा घड़ी की बड़ी और छोटी सुइयाँ कहाँ हैं?

(v) कित्ता टैम हुआ है?

स्पष्ट है कि स्थान, प्रयोजन, सन्दर्भ के आधार पर एक ही भाषा के स्वरूप में अन्तर मिलता है। समाजभाषाविज्ञान समाज-सांस्कृतिक प्राचलों (पैरामीटर) के आधार पर इन विविधताओं का अध्ययन-विश्लेषण करता है। इस प्रकार भाषा तथा समाज के अन्तःसम्बन्ध के समस्त पक्षों का अध्ययन, सामाजिक समूहों की पहचान, मानक एवं अमानक भाषा रूप, भाषा के स्तर एवं सामाजिक विभेद, बहुभाषिकता का सामाजिक आधार आदि विषय समाजभाषाविज्ञान के क्षेत्र में आते हैं।

2.2 भाषा-भाषी जन समुदाय speech community

भाषा भेद को भलीभाँति समझने के लिए भाषा-भाषी जनसमुदाय (speech community) की संकल्पना को जानना आवश्यक है। भाषा-भाषी जन समुदाय से तात्पर्य व्यक्तियों के उस समूह से है जो एक भाषा या बोली का प्रयोग करते हैं। हॉकेट के मतानुसार,

``Each language defines a speech community : the whole set of people who communicate with each other, either directly or indirectly, via the common language."

अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड के शब्दों में,

``A speech community is a group of people who interact by means

of speech."

आधुनिक समाजभाषाविद् लैबव की परिभाषा में साझे भाषिक व्यवहार के स्थान पर ज्ञान और अभिवृत्ति (व्यक्ति का रवैया/रुख) की साझेदारी को भाषा भाषी जन समुदाय की विशेषता माना गया। उनके अनुसार,

``The speech community is not defined by any marked agreement in the case of language elements, so much as by participation in a set of shared norms."

भाषा-भाषी जन समुदाय को कहीं सरल और कहीं जटिल आधार पर परिभाषित करने वाली उपर्युक्त परिभाषाओं के निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि व्यक्तियों का एक ऐसा समुच्चय जो अन्तःक्रिया के लिए समान भाषा या बोली का प्रयोग करे। भाषायी वैविध्य होने पर भी जिसके सदस्यों के मध्य सम्प्रेषण सम्भव हो और जिसके सदस्य एक प्रकार के सामाजिक नियमों, रीति-रिवाजों में बँधे हों। यही नहीं अपनी इन विशेषताओं के कारण जिसे अन्य भाषिक समुदायों से भिन्न ठहराया जा सके, उसे एक भाषा भाषी जन समुदाय कहा जा सकता है। एक समुदाय में व्यवहृत समस्त भाषिक रूपों को उस समुदाय का भाषिक भण्डार (verbal repertoire) कहते हैं। इसके अन्तर्गत भाषा के समस्त रूपों की गणना की जाती है जिनकी सहायता से वक्ता समाज की विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न सामाजिक भूमिका निभाने में समर्थ होता है, जैसे-हिन्दी भाषा-भाषी समुदाय के व्यक्ति जिन-जिन भाषाओं, बोलियों और शैलियों का प्रयोग करते हैं उनका समुच्चय उनके भाषिक भण्डार का निर्धारण करता है।

भाषा-भाषी जन समुदाय की संकल्पना से सहमत विद्वानों की धारणा है कि कोई भी भाषा समुदाय में स्थित रहती है किन्तु इसके विपरीत मान्यता वाले विद्वानों ने भाषा को 'व्यक्ति' विशेष में स्थित माना। इनके विचारानुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने में विशिष्ट दूसरों से भिन्न होता है और हर व्यक्ति इस बहुआयामी सामाजिक संसार में अपना अस्तित्व और अस्मिता बनाए रखने के लिए, अपने ढंग से भाषा का प्रयोग करता है। अतः सामाजिक कार्यों को पूरा करने के उपरान्त भी भाषा व्यक्ति के मस्तिष्क में अवस्थित रहती है। प्रसिद्ध समाजभाषाविद् लैबव ने इस बिन्दु पर अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा,

``language is not the property of the individual but of the community."

2.3 भाषा एवं बोली language and dialect

भाषा एवं बोली के मध्य स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना कठिन है। एक भाषिक समुदाय के समस्त वक्ता अपनी भाषा का सदैव समान तरह से प्रयोग नहीं करते हैं। भौगोलिक क्षेत्र तथा सामाजिक वर्ग के अनुरूप भाषा के भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं। भाषा की यह विविधता जब उसके प्रयोगकर्ताओं के भौगोलिक क्षेत्र का परिणाम हो तब उसे क्षेत्रीय बोली कहा जाता है। इसे निश्चित शब्द समूह और व्याकरणिक संरचना द्वारा पहचाना जा सकता है। समाज में प्राप्त स्तर भेद (उच्च, मध्य एवं निम्न) जातिभेद या लिंगभेद के कारण यदि भाषा में भेद प्राप्त हो तो उन्हें सामाजिक बोली के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रकार 'बोली' शब्द बोलचाल की भाषा से सम्बन्धित है जिसका प्रयोग जन साधारण के मध्य होता है। यह भाषा की छोटी स्वाभाविक इकाई है। प्रायः भाषाविद् बोली को भाषा से सम्बन्धित मानते हैं किन्तु यह नहीं स्वीकार करते हैं कि किसी विशिष्ट प्रान्त या सामाजिक वर्ग की बोली वहाँ की मानक भाषा का च्युत या अपभ्रष्ट भाषा रूप होती है। यह निश्चित है कि बोली ही समय और परिस्थिति से प्रभावित होकर भाषा का पद प्राप्त करती है। भाषा-बोली के संबंधों को पारस्परिक बोधगम्यता के सिद्धान्त पर व्याख्यायित करते हुए कतिपय विद्वानों ने कहा कि यदि एक भाषा के दो रूपों में पारस्परिक बोधगम्यता है तो उन्हें उस भाषा की बोलियाँ कहेंगे और यदि नहीं है तो उन्हें दो भाषाएँ माना जाएगा। भाषा-बोली भेद का यह आधार भ्रामक है क्योंकि चीनी भाषा की बोलियों मंडारिन, कैन्टानीज में इतनी भिन्नता है जितनी दो स्वतन्त्र भाषाओं के रूप में स्थापित फ्रेंच और इतावली में नहीं मिलती है।

भाषाविद् रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने भाषा और बोली के आधारभूत अंतर को निम्नलिखित तालिका के माध्यम से समझाने का प्रयास किया है-

भाषा	बोली
1. भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है	1. बोली का क्षेत्र, भाषा की तुलना में छोटा होता है।
2. सामाजिक प्रकार्य में स्वनिष्ठ एवं स्वायत्त होती है।	2. बोली किसी भाषा के अधीन एवं आश्रित होती है।
3. साहित्य, शिक्षा, संचार, प्रशासन आदि क्षेत्रों में प्रयोग होता है।	3. बोली का प्रयुक्ति क्षेत्र सीमित होता है।

4. समाज में प्रतिष्ठा और प्रभुता की द्योतक होती है।	4. 'बोली' समाज में प्रतिष्ठा का कारण नहीं बनती, यह आत्मीयता प्रदर्शित करती है।
5. इसका प्रयोग औपचारिकं सन्दर्भों में किया जाता है।	5. बोली का प्रयोग प्रायः अनौपचारिक सन्दर्भों में किया जाता है।
6. भाषा अधिक मानकीकृत होती है।	6. बोली में सापेक्षतया अधिक विकल्प मिलता है।
7. भाषा अपनी विभिन्न बोलियों के प्रयोगकर्ताओं के बीच सम्पर्क भाषा का काम भी करती है।	7. इसका प्रयोग बहुधा मातृभाषा के रूप में ही किया जाता है।

2.4 प्रयुक्ति register

एक भाषा-भाषी जन समुदाय के वक्ताओं की भाषा में प्रयोग सन्दर्भ के कारण वैविध्य मिलता है। वे औपचारिक से लेकर अत्यधिक अनौपचारिक सभी सन्दर्भों में उस भाषा रूप का व्यवहार करते हैं। किसी विशिष्ट परिस्थिति में सामाजिक दायित्व की पूर्ति के लिए वक्ता द्वारा प्रयोग की गई भाषा 'प्रयुक्ति' कहलाती है। हुडसन के मतानुसार,

``The term register is widely used in sociolinguistics to 'varieties according to use', in contrast with dialects, defined as `varieties according to user'."

स्पष्ट है कि हुडसन प्रयोग के आधार पर प्राप्त रूप भेदों को 'प्रयुक्ति' तथा वक्ता के आधार पर प्राप्त रूप भेदों को 'बोली' की संज्ञा देते हैं। हैलिडे के अनुसार प्रयुक्ति भाषा की उन प्रयोगाश्रित विविधताओं को कहा जाता है जो किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों अथवा विषय क्षेत्रों में प्रयुक्त भाषा के रूपभेदों को प्रकट करती हैं। जीन एट्चिसन का मानना है कि प्रयुक्ति भाषा की विशेषीकृत शैलियाँ हैं जो भाषा प्रयोग परिस्थिति पर आधारित होती हैं। कह सकते हैं कि सामाजिक सन्दर्भों की विशिष्टता के अनुरूप भाषा में विकसित व्यवहारपरक रूपभेद भाषा प्रयुक्ति निर्धारित करते हैं। इस प्रकार हर भाषा में विज्ञान, विधि, व्यापार, विज्ञापन आदि के अपने-अपने विशिष्ट प्रयोग सन्दर्भ, शब्दावली और शैली होती है जो इन क्षेत्रों की भाषा को एक विशेष स्वरूप प्रदान

करती है। इस तरह प्रयुक्ति किसी सामाजिक सन्दर्भ द्वारा निर्मित विशिष्ट भाषा रूप है।

किसी स्थिति सन्दर्भ में भाग लेने वाले दोनों पक्षों के पारस्परिक सम्बन्ध के अनुरूप भाषिक प्रयोग में भी परिवर्तन हो जाता है। बोलचाल की भाषा में यह लहजे का परिवर्तन कहलाता है। एक ही व्यक्ति अपने पिता, पुत्र और मित्र अथवा सहयोगी से कुछ न कुछ भिन्नता रखने वाली, भाषा में वार्तालाप करता है। जहाँ वह पिता से पूछेगा कि 'क्या आप जाएंगे? वहाँ पुत्र से जानना चाहेगा कि 'क्या तुम जाओगे?' और मित्र से कहेगा कि 'अबे यार! जायेगा?' स्पष्ट है कि विभिन्न व्यक्तियों से बात करते समय समानार्थी वाक्य के लिए वक्ता भाषा के भिन्न-भिन्न रूपों का प्रयोग करता है। स्थिति सन्दर्भ द्वारा निर्धारित इन परिवर्तनों को 'शैली' की संज्ञा भी दी जाती है। यही नहीं बाजार, सार्वजनिक स्थान, सभा, गोष्ठी आदि अलग-अलग सन्दर्भों में वक्ता की शैली भिन्न-भिन्न होती है। शैलीगत यह भिन्नता लिखित भाषा में भी मिलती है, जैसे– व्यावसायिक पत्र और वैवाहिक निमन्त्रण पत्र की शैली में अन्तर होगा। शैली प्रयुक्ति का इतना महत्त्वपूर्ण आधार है कि कतिपय विद्वान दोनों को पर्याय रूप में स्वीकार करते हैं। वास्तव में देखा जाए तो प्रयुक्ति एवं शैली में समाजपरक और कार्यपरक भेद के कारण अन्तर मिलता है। विभिन्न भूमिकों के आधार पर शैली तथा कार्यक्षेत्र के आधार पर प्रयुक्ति का महत्त्व होता है। प्रयुक्ति विषय विशेष और व्यवसाय के अनुरूप व्यवहृत भाषा रूप है तो समाजपरक विभिन्न भूमिकाओं से सम्बन्धित भाषा व्यवहार (औपचारिक-अनौपचारिक; मौखिक-लिखित) शैली से जुड़ा है। ध्यान रहे कि परिस्थितियों और विषय के अनुसार व्यक्ति के भाषा प्रयोग की शैली बदलती है अतः 'प्रयुक्ति' और 'शैली' अभिव्यक्ति की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

2.5 द्विशैलीयता diglossia

किसी भाषायी समाज में एक भाषा के दो या दो से अधिक रूपों का प्रयोग जब विभिन्न परिस्थितियों में होता है तो ऐसी स्थिति को भाषाद्वैत diglossia कहते हैं। भाषिक समाज के सदस्य जहाँ एक रूप का प्रयोग शिक्षा, राजनीति, साहित्यिक परिचर्चा तथा औपचारिक परिस्थितियों में नियमित रूप से करते हैं वहीं दूसरे रूप का प्रयोग अनौपचारिक तथा बोलचाल की परिस्थितियों में करते हैं। औपचारिक तथा अनौपचारिक के इस भेद को स्वीकार करते हुए एक भाषारूप को उच्च बोली तथा अन्य को निम्न बोली अभिधान दिए जाते हैं। प्रायः उच्च बोली साहित्यिक दृष्टि से प्रतिष्ठित व मानक रूप होती है या कभी-कभी वरेण्य कही जाने वाली भाषाएँ इस वर्ग

में आती हैं जबकि निम्न बोली स्थानीय जन भाषा होती है उदाहरणार्थ वरेण्य अरबी भाषा प्रकार्यात्मक दृष्टि से, इसी प्रकार अनेक अरबी भाषी देशों की बोलचाल की बोलियों से सम्बन्धित है। मानक जर्मन स्विट्जरलैण्ड में प्रयुक्त स्विस्-जर्मन से इसी भाँति सम्बन्धित है। यही सम्बन्ध मानक फ्रांसीसी तथा हैती (Haiti) में प्रयुक्त फ्रेंच क्रियोल के बीच मिलता है। इस तथ्य पर बल देना अनिवार्य है कि इन सभी उद्धरणों में वर्णित उच्च बोली व निम्न बोली के मध्य प्राप्त भिन्नता (विभेद) दो सामाजिक बोलियों में प्राप्त अन्तर से कुछ भिन्न होती है। ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते हैं जहाँ भाषिक समुदाय का शिक्षित वर्ग ही उच्च व निम्न दोनों बोलियों में पूर्णरूपेण प्रवीण हो। कतिपय स्थितियों में सांस्कृतिक कारणों से, उच्च बोली भाषा का शुद्ध व सही रूप माना जाता है। इस्लाम धर्म की भाषा होने के कारण यही स्थिति वरेण्य अरबी की है किन्तु जो लोग दोनों रूपों में प्रवीण होते हैं उनके प्रयोग की स्थिति सुनिश्चित व स्थायी होती है। ये रूप कभी भी एक दूसरे पर आरोपित नहीं होते हैं। वक्ता जिस परिस्थिति में अपने को पाता है उसके अनुरूप प्रयोग करता है। अन्य स्थितियों की भाँति इस स्थिति में भी बोली तथा शैलीगत विभेद क्षीण पड़ जाता है। विद्वानों का मानना है कि संरचनात्मक (ध्वनिप्रक्रियात्मक, व्याकरणिक व कोशीय भेदकता की) दृष्टि से ये दो रूप भिन्न बोलियाँ हैं और प्रकार्यात्मक दृष्टि से इन्हें पृथक शैलियाँ भी समझा जा सकता है।

2.6 कोड परिवर्तन code switching

सन्दर्भ एवं व्यवहार क्षेत्र की उपयुक्तता के अनुरूप जब वक्ता एक भाषा का प्रयोग करते करते दूसरी भाषा का प्रयोग करने लगे तो यह स्थिति कोड-परिवर्तन कहलाती है यथा-हमारे देश में कार्यालयों में कार्यरत समान सांस्कृतिक एवं भाषिक समुदाय से सम्बन्धित अधिकारी परस्पर अंग्रेजी में बात करते-करते अचानक मराठी/ गुजराती या बंगाली में बात शुरू कर देते हैं। कभी-कभी यह कोड परिवर्तन किसी प्रादेशिक बोलचाल की भाषा में भी हो जाता है प्रायः यह स्थिति उस समय होती है जब वार्तालाप औपचारिक से अनौपचारिक स्तर पर होने लगता है। इस प्रकार का कोड-परिवर्तन अनेक द्विभाषिक समुदायों में मिलता है।

हुडसन दो प्रकार के कोड परिवर्तनों की चर्चा करते हैं।

1. सन्दर्भपरक situational

2. लक्षणापरक metaphorical

जब वक्ता सन्दर्भानुसार भिन्न कोड का प्रयोग करे तो उसे सन्दर्भपरक कोड परिवर्तन कहते हैं जैसे लखनऊ का सिन्धी व्यापारी परिवार में सिन्धी, अपने ग्राहकों के साथ हिन्दी तथा स्कूल में अपने बच्चे की अध्यापिका से अँग्रेजी में बात करता है। कुछ अन्य स्थितियों में सन्दर्भ निर्णय नहीं करता है कि वक्ता किस कोड का चयन करेगा। यहाँ भाषा सन्दर्भ को निर्धारित करती है और तदनुसार कोड परिवर्तन होता है इसे लक्षणापरक कोड परिवर्तन कहते हैं, जैसे नॉरवीजयन भाषा बोलने वाला एक क्लर्क अपने ग्राहक के साथ अभिवादन और पारिवारिक बातचीत के लिए क्षेत्रीय बोली का प्रयोग करता है जबकि उसी व्यक्ति से व्यापारिक लेन-देन सम्बन्धी वार्तालाप के लिए मानक भाषा रूप का प्रयोग करता है।

2.7 कोड मिश्रण code mixing

जब वक्ता भाषा प्रयोग करते समय एक भाषा में दूसरी भाषा के तत्त्व मिला दें तो उसे कोड-मिश्रण कहते हैं। यह मिश्रण शब्द, पदबन्ध, उपवाक्य कई इकाइयों का होता है यथा हिन्दी बोलते समय अंग्रेजी के शब्दों, पदबन्धों आदि का प्रयोग करना- मेरा morning lecture आज नहीं हुआ। मैंने admission ले लिया है but I don't want to go. भाषा मिश्रण में एक भाषा आधार के रूप में होती है प्रायः आधार मातृभाषा होती है। यह मिश्रण भाषा का भाषा में, भाषा का बोली तथा बोली में भाषा का या बोली में बोली का हो सकता है। कोड-मिश्रण के कई कारण होते हैं। कतिपय भाषिक समुदाय किसी भाषा को दूसरे की तुलना में अधिक प्रतिष्ठित मानते हैं आदर मिलने के कारण वक्ता इस द्वितीय भाषा के शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग करने का प्रयास करता है। कभी स्वभाववश या आवश्यकतावश भी इस प्रकार के भाषिक प्रयोग मिलते हैं। कभी-कभी सांस्कृतिक रूढ़ियाँ इनके प्रयोग का कारण बनती हैं। भारतवर्ष में अनेक कारणों से आज कोड-मिश्रण की स्थिति बहुतायत में मिलती है।

2.8 भाषा सम्पर्क language contact

जब भौगोलिक या सामाजिक निकटता के कारण बोलियाँ या भाषाएँ एक दूसरे को प्रभावित करें तो इस स्थिति को भाषाओं के मध्य सम्पर्क की स्थिति माना जाता है। ये सम्पर्क भाषाओं को स्वनप्रक्रियात्मक, व्याकरणिक एवं शब्दावली स्तर पर परिवर्तित करता है। कभी-कभी सम्पर्क के कारण भाषाओं के मिश्रित रूप, जैसे-पिजिन एवं क्रियोल भी विकसित हो जाते हैं। भाषाविदों ने भाषाओं के मध्य घटित इस सम्पर्क के तीन प्रकारों की चर्चा की है-

(i) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष

जब दो भाषाओं के मध्य सीधा सम्पर्क हो तो उसे प्रत्यक्ष संज्ञा दी जाती है, जैसे- जनजातीय भाषा राजी एवं कुमाउँनी के मध्य स्थापित सम्पर्क। किन्तु जब यह सम्पर्क किसी अन्य भाषा के माध्यम से घटित होता है तो इसे अप्रत्यक्ष शीर्षक देते हैं, यथा- जनजातीय भाषा राजी का हिन्दी से सम्पर्क कुमाउँनी के माध्यम से हुआ है।

(ii) स्थायी एवं अस्थायी

जब दो भाषाएँ स्थायी रूप से सम्पर्क में रहें, जैसे उपरिवर्णित राजी और कुमाउँनी के मध्य स्थिति मिलती है। जब दो भाषाओं के मध्य व्यवसाय, युद्ध उद्योग के कारण थोड़े समय सम्पर्क रहे, जैसे--भारतीय भाषाओं का अरबी से सम्पर्क अस्थायी था।

(iii) सीमित एवं व्यापक

जब दो भाषाओं के मध्य कुछ निश्चित प्रयोग क्षेत्रों में ही सम्पर्क हो तो उसे सीमित सम्पर्क कहते हैं, यथा- भारत और चीन का प्राचीनकाल में हुआ व्यावसायिक सम्पर्क कई आगत तत्त्वों के आदान का कारण बना। हिन्दी और अंग्रेजी के सम्पर्क की स्थिति व्यापक कही जा सकती है।

कह सकते हैं कि प्रत्यक्ष, स्थायी एवं व्यापक सम्पर्क भाषाओं की संरचना को अधिक प्रभावित करता है और फलस्वरूप अनेक भाषिक अभिलक्षणों का आदान प्रदान होता है। प्रायः आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक शैक्षिक दृष्टि से समृद्धतर भाषा दूसरी भाषा पर हावी हो जाती है।

भाषा सम्पर्क के परिप्रेक्ष्य में निम्नलिखित समाजभाषावैज्ञानिक संकल्पनाओं की समुचित व्याख्या की जा सकती है।

2.9 द्विभाषिकता bilingualism

कतिपय देश शासकीय रूप में ही द्विभाषिक अथवा बहुभाषी होते हैं अर्थात् इन राष्ट्रों में दो या दो से अधिक शासकीय भाषाएँ स्वीकृत होती हैं, उदाहरणार्थ–कनाडा तथा बेल्जियम। कनाडा में अंग्रेजी तथा फ्रेंच दोनों शासकीय भाषाएँ हैं। अन्य राष्ट्रों में शासकीय द्विभाषिकता नहीं मिलती है किन्तु, उनकी सीमाओं में दो या दो से अधिक

भाषाएँ बोली जाती हैं। विश्व के प्रायः ज्यादातर देश दूसरे वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। जो देश शासकीय रूप में द्विभाषी होते हैं वहाँ यह आवश्यक नहीं होता है कि समस्त समुदायों द्वारा दोनों भाषाओं का प्रयोग किया जाए। तात्पर्य यह है कि इन राष्ट्रों में प्रायः निवासियों द्वारा दैनिक जीवन में इन दोनों भाषाओं का अथवा किसी एक का प्रयोग किया जाता है। स्पष्ट है कि जब किसी समुदाय के अनेक सदस्य द्विभाषी होते हैं तभी उस समुदाय को द्विभाषी समुदाय कहते हैं। राष्ट्रीय स्तर के साथ-साथ द्विभाषिकता की स्थिति वैयक्तिक स्तर पर भी मिलती है। किसी बच्चे के माता-पिता यदि भिन्न-भिन्न मातृभाषाओं का प्रयोग करते हैं तो प्रायः वह बच्चा दोनों भाषाएँ साथ-साथ सीखता है और यदि वह दोनों में समान रूप से दक्ष हो जाए तो ऐसा व्यक्ति द्विभाषी कहलाता है। आदर्श द्विभाषिकता प्रायः दुर्लभ होती है क्योंकि भाषा के समस्त प्रयोग, प्रसार में, सभी परिस्थितियों में आवश्यक दक्षता व्यक्ति के लिए दुष्प्राप्य होती है। किन्तु फिर भी दो या अधिक भाषाओं का लिखित एवं मौखिक ज्ञान अनेक व्यक्तियों को होता है। ऐसी स्थिति में प्रायः यह दृष्टिगत होता है कि एक भाषा प्रधान हो जाती है तथा द्वितीय उसकी अधीनस्थ होती है।

स्पष्ट है कि राष्ट्रीय और वैयक्तिक दोनों स्तरों पर द्विभाषिकता की अनेक स्थितियाँ हो सकती हैं। वैविध्य होते हुए भी सभी द्विभाषिक समुदायों में एक समानता यह मिलती है कि दो भाषाओं के व्यवहार/अधिकार क्षेत्र (domain) के मध्य स्पष्ट प्रकार्यात्मक भिन्नता होती है यथा-यदि एक का व्यवहार क्षेत्र घर है अर्थात् मित्र परिवार जन आदि से होने वाले वार्तालाप तो दूसरे का व्यवहार क्षेत्र गृह से बाहर हो सकता है। यह स्थिति भी हो सकती है कि वक्ता अपने घर में किसी अपरिचित के आने पर द्वितीय भाषा का प्रयोग करे और अपने घर के सदस्यों के साथ प्रथम भाषा का।

2.10 आदान borrowing

भाषाओं के मिश्रण का एक अन्य परिणाम आदान होता है। एक भाषा दूसरी भाषा से किसी भाषिक इकाई को उधार लेती है जो उस भाषा व्यवस्था का अंग बन जाता है। प्रायः दैनिक बोलचाल के अनेक शब्द—भोज्य पदार्थों के नाम, पेड़-पौधों के नाम, संगीत-शिक्षा से जुड़े नाम भाषाओं में आगत शब्द (loan word) के रूप मिलते हैं। दीर्घकाल तक प्रयोग के उपरान्त ये शब्द भाषा संरचना में ऐसे घर कर जाते हैं कि साधारण वक्ता उन्हें अपनी भाषा के शब्द समझता है। तुलनात्मक ऐतिहासिक शोधकर्ता के लिए ये आगत तत्त्व समस्या उत्पन्न करते हैं और प्रायः शोधकर्ता इन्हें एकत्रित सामग्री से अलग कर अध्ययन करता है। हेनरी स्वीट के शब्दों में,

``whenever two dialects or language come in contact they are sure to be influenced either on one side or on both. The influence being generally much stronger on one side. (The) result of influence is called borrowing."

अमरीकी संरचनावादी विद्वान ब्लूमफील्ड ने अपनी पुस्तक Language (1933) में आदान के दो प्रकार बताए हैं–

(i) **बोली आदान**–जब आगत तत्त्व या मद उसी भाषा की किसी बोली से लिया गया हो तो इसे बोली आदान की संज्ञा देते हैं, जैसे–हिन्दी में ब्रज, अवधी या भोजपुरी शब्दों का आदान।

(ii) **सांस्कृतिक आदान**–जब आगत तत्त्व या मद विजातीय भाषा से लिया गया हो, यथा–हिन्दी में व्यवहार किए जा रहे अंग्रेजी, फारसी भाषाओं के शब्द।

आदान की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए हुडसन ने कहा कि,

``whereas code-switching and code-mixing involved mixing languasge in speech, borrowing involves mixing the systems them selves, because an item is borrowed from one language to become part of another language."

ध्यान रहे कि भाषाओं के मध्य आदान मात्र शब्द समूह तक सीमित नहीं रहता बल्कि भाषा संरचना के समस्त स्तरों पर मिलता है।

2.11 भाषा परिवृत्ति language shift

भाषा सम्पर्क की स्थिति द्विभाषिकता की जनक हो सकती है। कई पीढ़ियों तक द्विभाषिकता की स्थिति चलने पर कभी-कभी कोई व्यक्ति या भाषिक समुदाय क्रमशः अथवा अचानक एक भाषा का प्रयोग छोड़कर दूसरी भाषा का प्रयोग आरम्भ कर देता है, इस स्थिति को भाषा परिवृत्ति की संज्ञा देते हैं। इस अवस्था में किसी भाषा विशेष के प्रयोग क्षेत्र का संकुचन हो जाता है और उसके स्थान पर दूसरी भाषा के प्रयोग क्षेत्र में वृद्धि हो जाती है। कई बार भाषा-भाषी जन समुदाय में सदियों तक द्विभाषिकता की स्थिति के बाद कई कारणों से 'भाषा परिवृत्ति' की स्थिति मिलती है, जैसे–आस्ट्रिया के ओबरवर्ट शहर में चार सौ साल तक जर्मन और हंगेरियन भाषा प्रचलित रही किन्तु वर्तमान समय में जर्मन भाषा ने न केवल शिक्षा और व्यवसाय

बल्कि घर-परिवार के क्षेत्र में भी अपना प्रभुत्त्व जमाना शुरू कर दिया है। भारतीय भाषाविद् अदिति मुखर्जी के शब्दों में,

``we may define `language shift' as the shift from the use of one language to the use of another..."

भाषा परिवृत्ति सदैव दो समुदायों के मध्य ही नहीं कभी-कभी एक समुदाय के भीतर भी घटित देखी जा सकती है। ऐसी स्थिति में परिवृत्ति दो भाषाओं के मध्य न होकर दो बोलियों के बीच घटित होती है। कभी-कभी रूपात्मक एवं प्रकार्यात्मक स्तर पर आंशिक परिवृत्ति मिलती है, जैसे आज लगभग समस्त भारत में उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। इस प्रकार अंग्रेजी ने भारतीय भाषाओं के प्रयोग क्षेत्र के इस भाग को अधिकृत कर रखा है।

2.12 भाषा विलुप्ति language death

भाषा परिवृत्ति की चरम स्थिति भाषा विलुप्ति को जन्म देती है। इस स्थिति में किसी भाषा का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता हुआ सभी व्यवहार क्षेत्रों–घर, बाजार, शिक्षा, धर्म, व्यवसाय आदि में समाप्त हो जाता है। डेविड क्रिस्टल के मतानुसार,

``the situation which arises when a language ceases to be used by a community..."

अर्थात् वह स्थिति जब एक भाषा-भाषी जन समुदाय अपनी भाषा का प्रयोग समाप्त कर दे और समाज के समस्त क्षेत्रों से उस भाषा का व्यवहार लुप्त हो जाए। ऐसी अवस्था में प्रायः देखा जाता है कि सम्पर्क की स्थिति में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से प्रभावशाली भाषा कमजोर भाषा पर हावी हो जाती है और यदि इस प्रक्रिया में कमजोर भाषा के व्यवहार क्षेत्र धीरे-धीरे कम होते जायें तो एक समय ऐसा आता है जब उसका लोप हो जाता है और भावी पीढ़ी उस भाषा का प्रयोग समाप्त कर देती है। डोरियन के शब्दों में, ``if transmission of a language ceases and remaining pool of speakers shrinks and eventually disappears, the language can be considered to have died. आज विश्व की 96 प्रतिशत भाषाएँ परिवृत्ति, अवनति अथवा विलुप्ति के कगार पर खड़ी हैं। भाषा विलुप्ति की स्थिति कई चरणों से गुजरती हुई आती है। इस सन्दर्भ में किसी समय, स्थान या वर्ष को चिन्हित नहीं किया जा सकता है। भाषा

विलुप्ति का संबंध व्यक्ति, परिवार या भाषिक समुदाय किसी से भी हो सकता है यही नहीं आरम्भिक चरणों में भाषा के प्रयोग में ह्रास भी मिलता है। शनैः शनैः उसका सम्प्रेषण माध्यम के रूप में प्रयोग समाप्त हो जाता है और आने वाली पीढ़ी के बच्चे (जो भविष्य में भाषा के संवाहक होते हैं) भाषा को सीखने से वञ्चित रह जाते हैं।

कैम्बेल के शब्दों में

``... a language dies when it no longer has any speakers."

2.13 भाषा-अनुरक्षण language maintenence

इसके विपरीत कभी-कभी कोई भाषा-भाषी जन समुदाय विभिन्न मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दबावों का सामना करता हुआ भी अपनी भाषा को सुरक्षित रखता है, इस स्थिति को भाषा-अनुरक्षण (language maintenence) की प्रक्रिया कहा जाता है। सामान्यतः अपनी भाषा के प्रति निष्ठा, भावात्मक लगाव, उसकी अस्मिता के प्रति वक्ताओं में विद्यमान जागरुकता आदि तत्त्व भाषा अनुरक्षण में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं। परिवृत्ति की भाँति अनुरक्षण भी आंशिक या पूर्ण हो सकता है, जैसे- आज हिन्दी भाषा-भाषी जन समुदाय में संस्कृत भाषा का प्रयोग धार्मिक क्रिया-कलापों और अनुष्ठानों में हो रहा है। कह सकते हैं कि संस्कृत आज अन्य क्षेत्रों से लुप्त होने पर भी धार्मिक व्यवहार क्षेत्र में अनुरक्षित है; यह आंशिक अनुरक्षण की स्थिति है। वहीं दूसरी ओर अनेक जनजातीय समुदाय मुख्य धारा में जुड़कर भी अपनी भाषा और संस्कृति को अनुरक्षित रखे हैं, जो पूर्ण अनुरक्षण का परिचायक है।

2.14 भाषा पुनरुद्धार language revitalisation

1991 में समाजभाषाविद् जे. फिशमैन ने भाषा परिवृत्ति, विलुप्ति के साथ-साथ भाषा पुनरुद्धार की संकल्पना की चर्चा की। 'Revising language shift' नाम से प्रकाशित उनका कार्य इस क्षेत्र का प्रथम महत्त्वपूर्ण स्तम्भ कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए फर्गूसन ने कहा कि,

``Language revitalization is an example of modifying the social and geographical distribution and functional allocation of language."

लौरा रेशिड के विचारानुसार,

``Language revitalization is a rescue of a dying language."

स्पष्ट है कि लुप्त या विलुप्ति की कगार पर खड़ी भाषा को जब भाषाविद् पुनः प्रयोग में लाने का प्रयास करते हैं तो यह प्रक्रिया भाषा पुनरुद्धार कहलाती है। यह कार्य भाषा-भाषी जन समुदाय, शिक्षक, मीडिया कर्मी, भाषाविद्, समाजसुधारक आदि सभी के सम्मिलित प्रयास से ही सफल होता है। आज विश्व में अनेक स्थानों पर पुनरुद्धार कार्यक्रम चल रहे हैं, जैसे मओरी पुनरुद्धार कार्यक्रम, राजी पुनरुद्धार कार्यक्रम आदि। भाषा पुनरुद्धार के लिए विद्वानों ने कई पद्धतियों जैसे द्विभाषिक पद्धति, मल्टीमीडिया पद्धति, रेडियो पद्धति, कृत्रिम पिजिन पद्धति, दत्तक पद्धति (adoption method) आदि की चर्चा की है। आज मल्टीमीडिया पद्धति का कई स्थानों पर प्रयोग किया जा रहा है।

2.15 भाषा नियोजन language planning

बहुभाषायी देशों में आर्थिक, शैक्षणिक नियोजन की भाँति भाषा नियोजन भी अनिवार्य होता है। प्रश्न उठता है कि नियोजन से क्या तात्पर्य है? जब पूर्वनिर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति सुव्यवस्थित, सचेत और सतत प्रयास द्वारा की जाए तो इसे नियोजन की संज्ञा दे सकते हैं। भाषा के सम्बन्ध में सर्वप्रथम इस शब्द का व्यवहार 1957 में वेइनरेइख़ ने किया। इसका तात्पर्य भाषा सम्बन्धी समस्याओं के समाधान निश्चित, व्यवस्थित साधनों के माध्यम से ढूंढ़ना है। डेविड क्रिस्टल के शब्दों में,

``Language planning is a term... to refer to a systematic attempt to solve the communication problems of a community by studing the various languages or dialects it uses and developing a realistic policy concerning the selection and use of different languages."

स्पष्ट है कि किसी भाषा-भाषी जन समुदाय की सम्प्रेषण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए किया गया- व्यवस्थित प्रयास भाषा नियोजन कहलाता है। हॉगेन ने भाषा नियोजन सम्बन्धी चार पैरामीटर प्रस्तावित किए–चयन, कोडीकरण, विस्तारण स्वीकार्यता। उन्होंने चयन और स्वीकार्यता को समाज से सम्बन्धित माना जबकि कोडीकरण और विस्तारण को भाषा से जोड़ने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम प्रशासन द्वारा राजनैतिक एवं व्यावसायिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भाषा का चयन किया जाता है। तत्पश्चात उस भाषा के कोडीकरण के उद्देश्य से ऐसी संस्था का

निर्माण होता है जो कोश, व्याकरण आदि की रचना करे। ये प्रयास भाषा को मानक रूप भी प्रदान करते हैं। यही संस्था चुनी गई भाषा के शिक्षण के लिए पाठ्य सामग्री भी तैयार करती है। यह कोडीकृत रूप जब जन सामान्य में स्वीकृति प्राप्त कर लेता है तो वह लोगों को एक सूत्र में बाँधने का कार्य करती है। इस प्रकार यह नियोजित भाषा ही सभी वक्ताओं को जोड़ने वाली कड़ी का कार्य करती है। ज्ञान-विज्ञान की विविध विशिष्ट माँगों का अनुसरण करते हुए यह भाषा रूप स्वतः विस्तृत और विकसित हो जाता है और साथ ही भाषा में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया भी घटित होती है।

2.16 भाषा आधुनिकीकरण language modernization

कोई भाषा अपने अर्वाचीन रूप से अधुनातम रूप तक परिवर्तन की धारा में बहती हुई पहुँचती है। उसका वर्तमान रूप किसी आकस्मिक घटना का नहीं वरन् समय के साथ उसके कलेवर में हुए धीरे-धीरे परिवर्तनों का प्रतिफल होता है। यह विकास भाषा का प्रकृत गुण ही नहीं वरन् उसकी जीवन्तता का बोधक होता है। जीवन के विभिन्न कार्यों को पूर्ण करने में सहायक भाषा ज्ञान के नवीन सन्दर्भों से जुड़ती हुई विकसित होती रहती है। इस प्रकार व्यवहार धर्मिता और गतिशीलता भाषा के विकास की सूचना देने वाले दो महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण हैं।

किसी भाषा के आधुनिकीकरण का तात्पर्य, चुने गए कोड को सामाजिक गतिविधियों के उन नित-नए बढ़ते आयामों में पूर्ण अभिव्यक्ति देने के लिए समर्थ बनाना है जिनमें उसका पहले प्रयोग नहीं हो रहा हो। इस प्रक्रिया के दो पक्ष होते हैं— (i) नवीन शब्दों व अभिव्यक्तियों से भाषा कोश का विस्तार (ii) नई शैलियों और प्रोक्ति रूपों का विस्तार।

इस प्रकार भाषा आधुनिकीकरण भाषा विकास का ही एक पक्ष है जो सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक आदि विकास के अन्य रूपों के साथ-साथ चलता है। ध्यान रहे कि भाषिक दृष्टि से होने वाला हर परिवर्तन या बदलाव किसी भाषा का विकास है किन्तु भाषा विकास की सीमा क्षेत्र में आने वाला प्रत्येक परिवर्तन आधुनिकीकरण की संज्ञा प्राप्त करे, यह अनिवार्य नहीं है। कभी-कभी यह विस्तार दिशाहीन, अत्यन्त व्यक्तिनिष्ठ या क्षेत्रीय भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में भाषा मानकीकरण का प्रश्न विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

2.17 मानक भाषा standard language

कभी-कभी किसी क्षेत्र विशेष की बोली धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि कारणों से महत्त्व प्राप्त करती है और उसका प्रयोग क्षेत्र विकसित हो जाता है। लोक-व्यवहार से परिष्कृत और सिद्ध शिक्षा, संचार माध्यम, साहित्य और प्रशासनिक कार्यों में प्रयुक्त ऐसे भाषा रूप को मानक भाषा कहते हैं। हुडसन के शब्दों में,

``... a prestige variety of language used within a speech community."

कह सकते हैं कि जब कोई भाषा-भाषी समुदाय, लोक-व्यवहार से परिष्कृत और सिद्ध ऐसे भाषा रूप का व्यवहार करने लगता है जो रूढ़ हो भाषा परम्परा के अंग बन जाते हैं तो उस भाषा रूप को मानक भाषा तथा घटित प्रक्रिया को मानकीकरण कहते हैं। मानकीकरण की यह प्रक्रिया कभी सहज ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में मिलती है तो कई समाजों में सचेत शुद्धीकरण प्रक्रिया के रूप में घटित होती है तथा कहीं-कहीं मानकीकरण आधुनिकीकरण प्रक्रिया के एक अंग के रूप में भी घटित मिलता है।

एक मानक भाषा को मानक रूप में स्थापित होने के लिए निम्नलिखित चार चरणों से गुजरना पड़ता है–

(i) चयन

कोई विशिष्ट रूप, किन्हीं कारणों से मानक भाषा के रूप में विकसित करने के लिए चुना जाता है। ये कारण सांस्कृतिक, राजनैतिक, व्यावसायिक हो सकते हैं और कभी-कभी एकाधिक कारण भी चयन का आधार बनते हैं। समाज में इस चुने रूप की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है और साथ ही इसका प्रयोग करने वाले व्यक्ति भी अपने को अन्य लोगों की तुलना में अधिक प्रतिष्ठित समझने लगते हैं। कभी-कभी राजनैतिक और सामाजिक कारणों से ऐसे रूप का चयन किया जाता है जिसका एक भी मातृभाषी नहीं होता है।

(ii) कोडीकरण

दूसरे चरण में ऐसे संस्थानों का निर्माण किया जाता है जो चुने हुए भाषा रूप के व्याकरण और कोश आदि का निर्माण करते हैं। इनके द्वारा किए गए सुधार सबको मान्य होते हैं और कोडीकरण के पश्चात सम्भ्रान्त नागरिक स्वयं ध्यान रखते हैं कि

लिखित भाषा में अशुद्धियाँ न हों और शुद्ध रूप का प्रयोग किया जाए।

(iii) विस्तारण

भाषा-व्यवहार के समस्त क्षेत्रों में इस भाषा रूप का प्रयोग होने लगता है। साहित्य की विविध विधाओं, विज्ञान, शिक्षा, प्रशासन, विधि आदि क्षेत्रों में प्रयोग हेतु इस भाषा रूप में नवीन भाषिक इकाइयों को जोड़ा जाता है इसे ही विस्तारण की संज्ञा देते हैं।

(iv) स्वीकार्यता

यह मानकीकरण का अन्तिम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चरण है। भाषा-भाषी जन समुदाय द्वारा इस भाषा रूप को स्वीकार्यता प्रदान की जाती है। प्रायः इसे राष्ट्रभाषा का स्थान दिया जाता है। स्वीकार्यता प्राप्त होने पर यह एक ऐसे शक्तिशाली सूत्र का काम करती है जो सभी वक्ताओं, एकाधिक राज्यों को संगठित रखती है।

❋❋❋

3.0 मनोभाषाविज्ञान

3.1 प्रकृति एवं स्वरूप

प्रसिद्ध भाषाविद् विल्हेलम फॉन हुम्बोल्ट का कथन है कि ``man is a man because of language..." प्रश्न उठता है कि मानव को मानव बनाने वाली, उसे निश्चित अस्मिता प्रदान करने वाली यह भाषा क्या है? मानव इसे कैसे अर्जित करता है? यह सामाजिक है अथवा वैयक्तिक? क्या मानव इसका प्रयोग मात्र सम्प्रेषण के लिए ही करता है? आरम्भ से ही विद्वान ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर की खोज में लगे हुए हैं। कह सकते हैं कि भाषा एक सामाजिक उपादान है जिसका अर्जन मानव शिशु अपने परिवार और समुदाय में रहकर करता है। सम्प्रेषण के इस माध्यम का प्रयोग वह भावों की अभिव्यक्ति, सूचनाओं के आदान प्रदान, ज्ञान के अर्जन, साहित्य के सर्जन, गहन चिंतन, मनन आदि कार्यों के लिए करता है। न केवल उसका दैनन्दिन का क्रिया कलाप वरन् धार्मिक, व्यावसायिक, आध्यात्मिक, औपचारिक, अनौपचारिक आदि समस्त व्यवहार इसी भाषा पर आश्रित है तथा इस भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन विश्लेषण भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र है।

मानवीय व्यवहार का परीक्षण, अध्ययन एवं विश्लेषण मनोविज्ञान का क्षेत्र है। चूंकि मानवीय व्यवहार का एक बहुत बड़ा भाग वाक् व्यवहार के रूप में घटित होता है अतः यह भी मनोविज्ञान की परिसीमा में आता है। भाषा एक **संज्ञानात्मक व्यवस्था** है जो प्रत्येक मानव की मानसिक या मनोवैज्ञानिक संरचना का अंग होती है। मनुष्य के अवचेतन में एक सामाजिक सम्पदा के रूप में स्थित रहती है। भाषा जानने का अर्थ है—व्यक्ति/मानव की मानसिक संरचना में भाषा विशेष के नियम समुच्चय (व्याकरण) के मानसिक प्रस्तुतीकरण का स्थित होना जो उसकी भाषा क्षमता का निर्माण करता है और जिसकी सहायता से वह भाषा बोलने और समझने में समर्थ होता है। मानव किस प्रकार चतुर्दिक घटित घटनाओं को अभिव्यक्त करता है? परिस्थिति विशेष में कैसे

अपनी भाषिक प्रतिक्रिया निर्धारित करता है? आदि तथ्यों का विवेचन मनोविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। चूंकि ये तथ्य भाषा से भी सम्बन्धित हैं अतः भाषाविज्ञान एवं मनोविज्ञान मिलकर इनका अध्ययन करते हैं और इस नवीन शाखा को मनोभाषाविज्ञान (psycholinguistics) की संज्ञा दी जाती है। डॉ. कृष्णास्वामी, वर्मा एवं नागराजन के मतानुसार,

``...Psycholinguistics is a study of the relationship between language as a network of relations and the human mind."

डॉ. मनोरमा गुप्त के अनुसार,

''भाषाविज्ञान यदि भाषा का, भाषायी व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक सिद्धान्त है तो मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं का, भाषायी ज्ञान का सिद्धान्त है। मनोभाषाविज्ञान इन दोनों का समन्वित उपागम है।''

श्री रमेशचन्द्र गर्ग के शब्दों में,

''मनोभाषाविज्ञान भाषा के विभिन्न अंगों को प्रयोक्ता की दृष्टि से देखता है। बोधन की प्रक्रिया में अध्येता को क्या-क्या सुगम या क्लिष्ट लगता है? उसको समझने में क्या-क्या तत्त्व सहायक होते हैं या क्या-क्या भ्रामक?'' इन सभी बातों का वह जिज्ञासुक होता है।

स्पष्ट है कि मनोभाषाविज्ञान का उद्देश्य मानवीय मस्तिष्क की प्रकृति पर नवीन अन्तर्दृष्टि प्रस्तुत करना है। साथ ही साथ भाषायी ज्ञान संज्ञानात्मक व्यवस्था में किस प्रकार द्योतित होता है? मानसिक प्रक्रियाएँ भाषा के माध्यम से कैसे क्रियान्वित एवं विकसित होती हैं? व्याकरण का मानसिक प्रस्तुतिकरण अर्थात् **भाषा क्षमता** (competence) कैसे और किस प्रकार भाषा के उत्पादन एवं अवबोधन अर्थात् **भाषा व्यवहार** (performance) में सहायक होती है। ज्ञानात्मक प्रक्रिया, संकल्पना निर्माण और स्मृति आदि में भाषा की क्या भूमिका है? आदि विषयों का सम्यक विवेचन मनोभाषाविज्ञान द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ दो अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों का उल्लेख करना समीचीन होगा—

3.2 विकासात्मक भाषाविज्ञान developmental linguistics

छोटे बच्चों के सम्पर्क में आए सभी पाठक इस तथ्य से परिचित होंगे कि बच्चा पहला शब्द (जैसे- अम्मा, पापा, बुआ) लगभग प्रथम वर्षगांठ के आसपास बोलता

है। यही नहीं डेढ़ वर्ष की अवस्था तक स्वतन्त्र शब्द जैसे—पानी, फल आदि बोलने लगता है और धीरे-धीरे छोटे वाक्य और पदबन्धों का प्रयोग करने लगता है जैसे— यदि उसे पानी चाहिए तो वह कहता है कि 'पानी पीना'। इसके बाद उसके व्याकरणिक विकास में बहुत गति देखने को मिलती है और दो-ढाई वर्ष की आयु में वह यह कहना सीख जाता है कि 'मम्मी, पानी पीना है।' विकासात्मक भाषाविज्ञान का सम्बन्ध शिशु के भाषा अर्जन की इन्हीं अवस्थाओं से है। आरम्भिक अवस्था में बच्चा किन ध्वनियों को पहले बोलता है तथा एक-डेढ़ वर्ष की अवस्था में शब्द और धीरे-धीरे पदबन्ध एवं वाक्य सीखता हुआ दो ढाई वर्ष में कैसे वयस्कों की भाँति व्याकरणिक वाक्यों का उत्पादन करने में समर्थ हो जाता है आदि बिन्दुओं पर चिन्तन एवं मनन इस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है। विकासात्मक भाषाविज्ञान विभिन्न भाषिक सिद्धान्तों एवं विश्लेषण प्रविधियों का अनुप्रयोग बच्चों की भाषिक सामग्री पर कर उसके वर्णन एवं व्याख्या का प्रयास करता है। सभी बच्चों में भाषा अर्जन अवस्था सम्बन्धी समानता और उनके विकास की तीव्रता को चामस्की ने मानव मस्तिष्क में स्थित जन्मजात भाषिक योग्यता (language faculty) का परिणाम माना। जिसके कारण हर बच्चे में व्याकरणिक विकास की प्रक्रियाओं का एक समुच्चय अनुवांशिक गुण के रूप में स्थित रहता है और शिशु अपने भाषिक अनुभवों के आधार पर व्याकरण की सहायता से वाक्यों को बोलने व समझने में समर्थ होता है। इस प्रकार जिस भाषिक वातावरण में वह रहता है जन्मजात योग्यता के आधार पर वही भाषा अर्जित करता है। इन सार्वभौमिक रूप में प्राप्त विकास की अभिरचनाओं का सूक्ष्म विवेचन तथा उपलब्ध परिवर्त्यों एवं प्रतिमानों की व्याख्या भी विकासात्मक भाषाविज्ञान का कार्य क्षेत्र है।

3.3 स्नायविक भाषाविज्ञान neurolinguistics

स्नायहविक भाषाविज्ञान में मानवीय भाषा विकास एवं प्रयोग के तंत्रिकावैज्ञानिक आधारों का अध्ययन किया जाता है। बोलना, सुनना, पढ़ना एवं लिखना जैसी क्रियाओं को मस्तिष्क कैसे नियन्त्रित करता है यह इसके अध्ययन का क्षेत्र है। मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र में किसी प्रकार का आघात इन क्रियाओं पर क्या प्रभाव डालता है आदि विषयों का अध्ययन इस शाखा के अन्तर्गत किया जाता है। ध्यान रहे कि मानवीय मस्तिष्क अनेकानेक सतहों द्वारा निर्मित एक जटिल संरचना वाला अंग है जो मानव शरीर की रीढ़ की रज्जू से जुड़ा होता है। इसे दाएँ एवं बाएँ दो अर्ध गोलों (हेमिस्फ़ियर) में बाँटा जा सकता है। इन दोनों भागों को जोड़ने वाला हिस्सा 'कार्पस कॉलोसुम' कहलाता है। मानव की उच्चस्तरीय बौद्धिक क्षमताएँ, भाषा आदि जहाँ

स्थित होते हैं वह भाग 'ग्रे मैटर' (घूसर द्रव्यः/बुद्धि) नाम से जाना जाता है। विभिन्न मात्रा में क्षतिग्रस्त मस्तिष्क वाले रोगियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि मस्तिष्क के अलग-अलग अंग भिन्न-भिन्न कार्यों को नियन्त्रित करते हैं। क्षतिग्रस्त हुए मस्तिष्क के कारण उत्पन्न भाषिक रोगों की चर्चा इसी अध्याय में आगे की गई है।

भाषा और मनोविज्ञान की सम्बद्धता यद्यपि स्वयं सिद्ध है और आदिकाल से ही 'भाषा के मनोविज्ञान' पर यहाँ-वहाँ चर्चा मिलती है। आधुनिक काल में इस विचार को एक वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर स्थापित किया गया। येस्पर्सन, हुम्बोल्ट एवं सेस्यूर जैसे विद्वानों ने भाषा की प्रकृति एवं उत्पत्ति के संबंध में मनोवैज्ञानिक पक्षों पर प्रकाश डाला। येस्पर्सन ने भाषा की उत्पत्ति एवं विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान मनोभावों और संवेगों का ही माना है। द्वितीय विश्व युद्ध के आसपास यकोब्सन तथा जे.आर. कन्टोर नामक विद्वानों ने भी इस विषय से सम्बद्ध चिन्तन को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया। इन विद्वानों ने सर्वप्रथम बाल-भाषा के अध्ययन के महत्त्व को रेखांकित किया और कहा कि वास्तव में भाषा का किसी भी प्रकार का मनोवैज्ञानिक अध्ययन बाल-भाषा के क्रमबद्ध अध्ययन के बिना पूरा नहीं कहा जा सकता है। आधुनिक भाषाविद् चॉमस्की भी सार्वभौमिक भाषा संरचना की परिकल्पना को बच्चे की भाषा प्रवृत्ति के वर्णन, विश्लेषण एवं व्याख्या पर निर्भर मानते हैं। युद्ध के बाद के दशकों में मनोभाषाविज्ञान के क्षेत्र में कुछ नई सम्भावनाएँ दृष्टिगत हुईं।

एक अध्ययन विषय के रूप में भाषाविज्ञान की इस शाखा की स्थापना 1951 में उस समय हुई जब 'सोशल साइन्स रिसर्च काउन्सिल' द्वारा आयोजित सम्मेलन के दौरान अनेक प्रसिद्ध भाषाविदों एवं मनोवैज्ञानिकों ने 'मनोभाषाविज्ञान' के शोध की रूपरेखा का निर्माण किया। इसके पूर्व 'भाषा का मनोविज्ञान' नाम अधिक प्रचलित था जिसके अध्ययन का उद्देश्य भी कुछ भिन्न था। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों का मानना था कि उद्दीपक और वाचिक प्रतिक्रिया के मध्य सीधा सम्बन्ध होता है। इनके बीच अर्थ, विचार, व्याकरणिक नियम आदि परिवर्तों की आवश्यकता नहीं होती है। इन विद्वानों ने अर्थ को शब्द के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण माना तथा वाक्य, कथन और प्रोक्ति से सम्बन्धित अर्थ समस्याओं पर इनका ध्यान नहीं गया। 1951 में किए गए इस नामकरण का उद्देश्य भाषिक व्यवहार के अध्ययन हेतु नवीन उपागम की चर्चा करना, भाषा की सर्जनात्मकता पर बल देना तथा प्रयोक्ता की भाषा उत्पादन क्षमता को रेखांकित करना था। इस प्रकार मनोभाषावैज्ञानिक अध्ययनों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया गया—

(i) विकासात्मक मनोभाषाविज्ञान

इसके अन्तर्गत प्रथम भाषा अर्जन एवं द्वितीय भाषा अधिगम से जुड़े विविध पक्षों का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। द्विभाषी अथवा बहुभाषी अर्जन की प्रक्रियाएँ एवं समस्याओं के साथ-साथ बाल-भाषा अध्ययन की अवस्थाओं, भाषा अर्जन के विभिन्न चरणों आदि बिन्दुओं की चर्चा इस वर्ग में आती है।

(ii) भाषा संसाधान

भाषा का संज्ञान कैसे होता है, भाषा बोध के विविध चरण भाषा बोध एवं उत्पादन का संबंध आदि शीर्षकों पर किया गया चिन्तन एवं मनन इस शाखा की विषय वस्तु का निर्माण करता है।

(iii) अनुप्रयुक्त मनोभाषाविज्ञान

वाचाघात, अपठन, व्याकरण विकास आदि भाषिक रोगों के लक्षण, कारण एवं निवारण से सम्बन्धित विवेचन इस वर्ग के अन्तर्गत किया जाता है।

स्पष्ट है कि मनोभाषाविज्ञान का कार्य उन समस्त मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन करना है जो भाषा अर्जन, भाषा संज्ञान, भाषा प्रयोग एवं भाषा विकार से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार भाषा अर्जन/अधिगम, बोधन तथा अभिव्यक्ति से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक तथा भाषिक प्रक्रियाएँ इसके कार्यक्षेत्र का निर्धारण करती हैं।

1970 के दशक में मनोभाषाविदों का ध्यान भाषा-उत्पादन से जुड़ी समस्याओं की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने संज्ञानात्मक संरचना एवं भाषिक रूप के मध्य घटित संबंधों को ज्ञात करने का प्रयास किया। किसी वाक्य का नियोजन व उत्पादन इस तथ्य से प्रभावित होता है कि—वक्ता किसी विषय की व्याख्या करना चाहता है या वर्णन, सूचना की अपेक्षा रखता है या व्यावसायिक समझौते पर चर्चा कर रहा है। चूँकि वाक्य उत्पादन एक गतिशील प्रक्रिया है अतः कतिपय निश्चित प्रसंगों को छोड़कर (जैसे—कोई बैठक आदि) वह विशेष नियमों का पालन नहीं करती है। फलतः उसका अध्ययन कठिन हो जाता है। वाक्य नियोजन व उत्पादन का अध्ययन कोशीय चयन, पदबन्धीय चयन एवं स्वनप्रक्रियात्मक कोडीकरण इन तीन बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है। किसी वाक्य के बोले जाने के पहले कई प्रकार की प्रकारताएँ (modalities) कार्य करती हैं, जैसे-विचार, अवधारणाएँ, भावनाएँ तथा अर्थ की वे इकाइयाँ वक्ता जिन्हें सम्प्रेषित करना चाहता है। वक्ता क्या कहना चाहता है एक बार

इस विषय पर निर्णय हो जाने पर प्रतिनयन/रिट्रीवल व्यवस्था नियमों एवं रूपों की प्रविष्टि को ध्यान में रखते हुए वाक्य संरचना को निर्धारित करती है। इस स्तर पर दो प्रकार की समस्याएँ हो सकती हैं–(1) जब वक्ता यह कहे कि शब्द उसकी जुबान पर है किन्तु याद नहीं आ रहा है, (2) जब वक्ता जिस शब्द को व्यवहार में लाना या बोलना चाहता है उसके स्थान पर किसी अन्य शब्द का प्रयोग करता है। इस स्थानापत्ति का क्या आधार है यही मनोभाषाविद् के अध्ययन का विषय होता है।

स्पष्ट है कि भाषा उत्पादन एक जटिल प्रक्रिया है। जहाँ एक ओर वक्ता प्रमुख वर्णेय घटकों के लिए शब्दों का चयन करता है वहाँ दूसरी ओर प्रत्येक घटक को एकल इकाई के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। यह दोहरी प्रक्रिया उसके कार्य को और अधिक कठिन बना देती है। परिणामतः हिचकिचाहट, पुनरावृत्ति अथवा अशुद्धियाँ/त्रुटियाँ सामने आती हैं।

3.4 भाषा अर्जन language acquisition

जिस प्रकार भाषा बोलने तथा सुनने का एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक आधार होता है उसी प्रकार भाषा सीखने का भी महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष होता है। भाषा सीखने की दो स्थितियाँ हो सकती हैं–मातृभाषा सीखना जिसे सम्प्रति मातृभाषा या प्रथम भाषा अर्जन कहते हैं; विदेशी या दूसरी भाषा सीखना जिसे आज भाषा अधिगम का नाम दिया जाता है। भाषा अर्जित करते समय बच्चा भाषा सीखता भी है और तत्सम्बन्धी बिम्बों का ज्ञान भी अर्जित करता है जबकि द्वितीय भाषा अधिगम के समय उसे पहले से ही बिम्ब का ज्ञान होता है उसे सिर्फ भाषा सीखनी होती है। कह सकते हैं कि भाषा अर्जन से तात्पर्य शिशु द्वारा क्रमिक विकास की अवस्था में भाषा क्षमता को प्राप्त कर परिस्थिति उत्पन्न होने पर उसका प्रयोग करना है। व्यवहारवादी मनौवैज्ञानिक सिद्धान्तों से प्रभावित हो अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड ने भाषा को व्यवहार माना। इनके अनुसार शिशु द्वारा अचानक बोली गई ध्वनियों से भाषार्जन का सम्बन्ध होता है। शनैः-शनैः ये ध्वनियाँ आसपास के उपादानों, वस्तुओं से साहचर्य स्थापित कर लेती हैं, जैसे–बच्चा 'ब' ध्वनि का उच्चारण करता है तत्पश्चात् माता-पिता द्वारा बाबा, बोतल, बोल आदि शब्दों का प्रयोग किए जाने पर 'ब' से उनका साहचर्य स्थापित कर लेता है। माता-पिता की प्रतिक्रिया के आधार पर, बाबा के सामने आने पर वह 'ब' कहता है फिर 'बाबा'। धीरे-धीरे उनकी अनुपस्थिति में भी 'बाबा' कहना शुरू कर देता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में माता-पिता या वयस्कों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उनकी प्रतिक्रिया एवं पुनर्बल बच्चे को बढ़ावा देते हैं।

अमरीकी भाषाविद् नोअम चॉम्स्की ने भाषा अर्जन का एक भिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उनके अनुसार भाषा अर्जन की क्षमता प्रत्येक सामान्य मानव शिशु में जन्मजात होती है फलतः उचित भाषिक वातावरण मिलने पर यह सहज क्षमता क्रियाशील हो जाती है और शिशु संबद्ध भाषा को स्वाभाविक रूप से अर्जित करने लगता है। वह गृहीत नियमों की सहायता से अनेकानेक वाक्यों के सृजन व अवबोधन में समर्थ होता है। यहाँ तक कि उन वाक्यों को भी बोल व समझ लेता है जो उसने पहले नहीं सुने हैं। चॉम्स्की का कहना है कि उद्दीपक सदैव सरल एवं असंदिग्ध नहीं होते हैं और कभी-कभी एक उद्दीपक की एकाधिक प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं। प्रत्येक उद्दीपक की क्या प्रतिक्रिया होगी इसका पूर्वानुमान लगना कठिन है। कोई भी भाषा उद्दीपक से बंधी नहीं होती। यही कारण है कि वक्ता कहीं भी, कभी भी और कुछ भी बोल सकता है। चॉम्स्की ने भाषा अर्जन को मस्तिष्क की 'आरम्भिक' व 'अन्तिम अवस्था' के रूप में प्रतिपादित किया। जिस समय नवजात शिशु कोई भाषा नहीं जानता वह अवस्था 'शून्य अवस्था' (Zero State /S_0) कहलाती है। जब एक मातृभाषाभाषी को अपनी भाषा का पूर्ण ज्ञान होता है तो यह अवस्था 'अन्तिम अवस्था' (final /S_s) कहलाती है। यह अन्तिम अवस्था अपने सभी उद्देश्यों में स्थिर होती है। यद्यपि हर भाषाभाषी नवीन शब्दों का ग्रहण करता है और समय के साथ उसके शब्द भण्डार से कतिपय शब्द लुप्त भी हो जाते हैं। सम्भव है कि समय के साथ वह कुशल वक्ता बन जाए या उसकी कुशलता में कुछ कमी आ जाए तथापि यह निश्चित है कि आरम्भिक अवस्था में प्राप्त भाषा क्षमता समान रहती है। इस प्रकार भाषार्जन का तात्पर्य शून्य अवस्था से अन्तिम स्थिर अवस्था की ओर बढ़ना है। मानव शिशु अनुवांशिक रूप से निर्धारित S_0 से बढ़ता हुआ S_1, S_2 के अनुक्रम पार करता हुआ अन्ततः S_s तक पहुँचता है जिसमें आंशिक परिवर्तन हो सकता है।

सामान्यतया ऐसा प्रतीत होता है कि कोई वक्ता बिना किसी प्रयास के भाषा बोल रहा है किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रत्येक उच्चरित कथन के पूर्व एक निश्चित जटिल प्रक्रिया घटित होती है। वक्ता क्या बोले और क्या न बोले? किस वाक्य को अपने सम्भाषण का अंग बनाए आदि प्रश्नों के पीछे अनेक परस्पराश्रित समस्याएँ दृष्टिगत होती हैं। भाषा-उत्पादन के समय वक्ता को शब्दों का चयन, शब्द के सहप्रयोग, पदबन्ध का चयन, शैली का चयन, सन्दर्भानुसार प्रयुक्ति का चयन आदि तथ्यों का ध्यानपूर्वक नियोजन करना पड़ता है।

3.5 भाषिक रोग language disorder

भाषिक रोग से तात्पर्य उन व्याधियों से है जो व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया में उत्पन्न विकारों के कारण उसके भाषिक व्यवहार को विभिन्न रूपों में विकृत कर देती हैं। ये विकार वाक्य/कथन के निर्माण, उसकी अभिव्यक्ति के साथ साथ उसके श्रवण और बोधन को भी प्रभावित करते हैं। इनसे व्यक्ति का मौखिक भाषा रूप ही नहीं लिखित रूप भी प्रभावित हो सकता है।

3.6 वाचाघात aphasia

मानसिक आघात के कारण जब व्यक्ति के बोलने में दोष आ जाए तो उसे वाचाघात की संज्ञा दी जाती है। यह मानसिक कोशाणुओं के विलोपन का परिणाम होता है। इसका रोगी विकासक्रम की पिछली अवस्था में पहुँच जाता है। कुछ रोगियों को भाषा समझने में परेशानी होती है तो कुछ उसके प्रत्यक्षीकरण में असफल रहते हैं। वाचाघात के रोगी में तुतलाना, ध्वनि निरुद्धता और कथन अवरोध सभी एक साथ भी हो सकते हैं। कुछ स्थितियों में ये लक्षण क्रम से उत्पन्न होकर बढ़ भी जाते हैं। जार्ज यूल के शब्दों में–

``Aphasia is defined as an impairment of language function due to localized cerebral damage which leads to difficulty in understanding and/or producing linguistic forms. The most common cause of aphasia is stroke..."

डॉ. भटनागर के अनुसार,

``Aphasia is a communication disorder resulting from damage to the brain. A person with aphasia is able to perform intellectual functions like thinking and reasoning but his/her ability to speak, understand speech read or write are impaired."

वाचाघात के प्रकार

(i) **रिसेप्टिव**–इस रोग से ग्रस्त रोगी भाषा समझ नहीं पाता है। वह शब्दों या अन्य भाषिक इकाइयों का साहचर्य अर्थ से स्थापित करने में समर्थ नहीं होता है तथा उस का संज्ञान सीमित हो जाता है किन्तु भाषण में प्रवाह विद्यमान रहता है। प्रायः ऐसे रोगी निरर्थक वाक्यों को धाराप्रवाह रूप से बोलते रहते हैं। वाचाघात से ग्रस्त

एक रोगी को शब्दों एवं वाक्यों को समझने में कठिनाई हो रही थी। डाक्टर ने जब उससे कुछ पूछा तो उसने व्याकरणिक दृष्टि से शुद्ध किन्तु निरर्थक वाक्यों का उच्चारण अत्यन्त मधुर ढंग से दिया। न तो रोगी इस बात से परिचित था कि वह निरर्थक प्रलाप कर रहा है और, न ही वह सामने वाले की प्रतिक्रिया के प्रति सजग था।

(ii) एक्सप्रैसिव—रोगी की बोलने की क्षमता में दोष आ जाता है। माँसपेशियों में आघात के कारण जहाँ कुछ रोगी अशुद्ध बोलते हैं तो कुछ बोलने के लिए शब्द याद नहीं कर पाते हैं, वहाँ कुछ अन्य रोगी असंयोजित एक शब्द से निर्मित वाक्यों का प्रयोग करते हैं। ध्यान रहे कि इनमें भाषा को समझने की पूर्ण क्षमता होती है किन्तु बोलने की क्षमता बहुत सीमित होती है। यह एक गम्भीर भाषिक रोग है। इसे 'ब्रोकास अफेसिया' भी कहते हैं। इससे पीड़ित रोगी बोलते समय कठिनाई महसूस करता है। उसके शब्द भण्डार में कोशीय रूपिम (जैसे—संज्ञा और क्रिया) मिलते हैं किन्तु वह प्रायः व्याकरणिक रुपिम (जैसे—परसर्ग, विभक्ति आदि) का प्रयोग नहीं करता है, जैसे—एक पचपन साल की गृहणी को दाएँ अंग की दुर्बलता हो गई जिसके कारण वह बोलने में असमर्थ थी। बाह्य रूप से इस दुर्बलता का प्रभाव उसके चेहरे एवं बाँह पर दिखाई पड़ रहा था पर वह चल फिर सकती थी। बोलने में असमर्थ होने के कारण वह प्रतिक्रिया नहीं कर रही थी किन्तु सिर हिला कर जवाब दे रही थी। बोले गए निर्देशों तथा सरल वाक्यों के माध्यम से लिखे गए निर्देशों का पालन करने के कारण यह स्पष्ट था कि उसकी भाषा समस्या बोधन संबंधी न होकर अभिव्यक्ति सम्बन्धी थी।

(iii) एनोमिक—यह वाचाघात का सबसे आम प्रकार है जिसमें रोगी वस्तुओं और लोगों के नाम याद नहीं कर पाता है तथा सही शब्द भूल जाने पर आस-पास का शब्द प्रयोग करता है अथवा बात को घुमा-फिरा कर पूरा कर लेता है। इस प्रकार इसका प्रमुख नैदानिक लक्षण शब्द चयन क्षमता में दोष उत्पन्न होना कहा जा सकता है।

(iv) जार्गन—इस प्रकार के रोगी को सही शब्द के चयन में बहुत कठिनाई होती है और प्रायः रोगी नए शब्दों का निर्माण कर लेता है किन्तु उसे इस बात का आभास नहीं होता कि वह अपने मन से गढ़े शब्द का प्रयोग कर रहा है। इन मनगढ़न्त शब्दों की सहायता से रोगी भाषा की सामान्य शुद्ध व्याकरणिक संरचना के अनुरूप वाक्यों का निर्माण करता है जो श्रोता के लिए निरर्थक होते हैं।

(v) **अन्य विकार**—पढ़ने एवं लिखने से सम्बन्धी दोषों को भी वाचाघात से जोड़ा जाता है। कभी कभी रोगी शब्द की वर्तनी बताने या वाक्य लिखने में समर्थ नहीं होता है। यही नहीं कतिपय रोगी लिखे हुए वर्णों का साहचर्य उनकी ध्वनियों से स्थापित नहीं कर पाते हैं फलतः वाक्य का अर्थ समझने में सक्षम नहीं होते हैं। रोगी गणितीय जोड़-घटाना करने में भी कठिनाई का अनुभव करता है।

वास्तव में देखा जाए तो कोई भी दो रोगी समान नहीं होते हैं अतः उनकी भाषिक समस्याएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। कतिपय रोगियों की समस्याएँ हल्की फुल्की होती हैं तो कुछ रोगी गम्भीर स्थिति में होते हैं। ध्यान रहे कि वाचाघात से होने वाले भाषिक दोष का रोगी अपनी सोचने समझने और तर्क की शक्ति नहीं खोता है। उसमें मेधा का लोप नहीं होता है। यह अवश्य है कि आरम्भ में ऐसा प्रतीत होता है कि रोगी अपने आसपास की परिस्थितियों से अपरिचित एवं भ्रमित है।

3.7 अपठन dyslexia

लिखित भाषा के अर्जन और विकास में आने वाले दोष अपठन के अन्तर्गत परिगणित किए जाते हैं। बाल्यावस्था के इन विकारों का प्रभाव डेढ़-दो या उससे अधिक आयु वर्ग वाले बच्चों के पठन एवं लेखन पर पड़ता है। बहुत से आरम्भिक पाठक पहले न पढ़े हुए शब्द को बोलकर पढ़ते हैं तथा उस उच्चरित ध्वनिक्रम से शब्द के अर्थ का साहचर्य जोड़ लेते हैं। जैसे-जैसे उनके पढ़ने/पाठन की क्षमता बढ़ती है उनके 'बोल कर पढ़ने' की प्रक्रिया धीमी पड़ जाती है और वे दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले अनेक शब्दों को मात्र आकृति के आधार पर पहचान लेते हैं। यहाँ महत्त्वपूर्ण तथ्य यह कि पाठक लिखित भाषा को इतनी सरलतापूर्वक सीधे अर्थ में परिवर्तित करता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसने किसी प्रकार के आन्तरिक शब्द भण्डार/कोश का सम्पादन कर लिया हो। इस शब्द भण्डार में सभी वर्ण अनुक्रमों की उच्चारण तथा अर्थ सम्बन्धी सूचनाएँ स्थित रहती हैं। एक पाठक वर्ण अनुक्रम/व्यवस्था सम्बंधी नियमों को सीखता है और इनके ज्ञान के कारण ही वह किसी शब्द को शीघ्र ही पहचानने में समर्थ होता है। इस प्रकार एक प्रौढ़ पाठक लिखित सामग्री के अर्थ को ग्रहण करने के लिए तीन विधियों का प्रयोग करता है— पहला लिप्यांकित सामग्री को ध्वनि और फिर अर्थ में रूपान्तरित करना, दूसरा वर्ण अनुक्रमों को सीधे अर्थ में परिवर्तित करना तथा तीसरा शब्द आकृति से अर्थ तक पहुँचना। पठन के इन तीन तरीकों में कही दोष होने पर व्यक्ति में अपठन विकार

उत्पन्न हो जाता है। प्रायः दो प्रकार के अपठन रोगी मिलते हैं–

- स्वनप्रक्रियात्मक अपठन
- बहिस्तलीय अपठन

प्रथम प्रकार के रोगी में 'ध्वनि के माध्यम से पठन' प्रक्रिया में कहीं कमी रह जाती है। पठन का दृश्य रूप/मार्ग सहायक रूप में उपलब्ध होने के कारण रोगी बोल-बोल कर पढ़ने में अधिक अशुद्धियाँ नहीं करता परन्तु पहले न देखे गए शब्दों को ये रोगी पढ़ नहीं सकते हैं। अन्त्यानुप्रास एवं समान वर्तनी वाले शब्दों को देख ये भ्रमित हो जाते हैं और प्रायः शब्द के दृश्य रूप की सहायता से उसका उच्चारण करते हैं जो उच्चारण को अशुद्ध बना देता है। द्वितीय प्रकार के विकार से ग्रस्त रोगी शब्द को मात्र देख कर नहीं पढ़ पाता है। यद्यपि ये पहले न पढ़े हुए शब्दों का भी उच्चारण/पठन कर लेते हैं किन्तु उच्चारण के नियमों का उल्लंघन करने वाले शब्दों का उच्चारण करने में इन्हें समस्या होती है। अपठन दोष वाले बच्चों के विकास में बाधा आती है। चूंकि हमारा अधिकतर आरम्भिक शिक्षण पठन पर निर्भर करता है अतः ये बच्चे पढ़ाई में पीछे रह जाते हैं। आरम्भ में माता-पिता और अध्यापक इनके रोग की पहचान नहीं कर पाते हैं परिणामतः बच्चे को बुद्धू और बेवकूफ समझा जाता है जिससे उसके आत्मविश्वास को ठेस पहुँचती है। यदि बच्चे की समस्या का समय पर पता चल जाए तो उसे कई ऐसे गुण सिखाए जा सकते हैं जिनसे वह अपनी पठन की कमी पर विजय प्राप्त कर ले।

3.8 लेखन वैकल्य dysgraphia

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि लिखित भाषा मौखिक भाषा पर आश्रित है जब कि यह नहीं कहा जा सकता कि मौखिक भाषा का अस्तित्व लिखित के बिना अधूरा है। लेखन क्रिया पठन की तुलना में अधिक कठिन कही जा सकती है। पढ़ने/पठन के दो तरीके हो सकते हैं--स्वनप्रक्रियात्मक विकोडीकरण द्वारा या सम्पूर्ण शब्द की पहचान द्वारा किन्तु लिखते समय वर्तनी का शुद्ध होना आवश्यक होता है। यही नहीं अनेक शब्दों के स्वन्यात्मक रूप एवं वर्तनी में समतुल्यता नहीं होती है, जैसे–हिन्दी में हम बोलते 'ठैहर' हैं जबकि लिखते 'ठहर' हैं। यही कारण है कि लेखन अधिक कठिन माना जाता है। कभी-कभी मस्तिष्क में लगी चोट रोगी की लेखन क्षमता में बाधा पहुँचाती है और उसे लिखने में कठिनाई का अनुभव होता है इसे **लेखन वैकल्य** की संज्ञा दी जाती है।

3.9 मानसिक मंदन mental retardation

प्राप्त आँकड़ों के अनुसार आज हर सौ बच्चों में से तीन बच्चे इस रोग से ग्रस्त होते हैं। ऐसे रोगी में औसत से निचले स्तर का बौद्धिक ज्ञान होता है। इन्हें सम्प्रेषण, स्वयं की देखभाल, शिक्षा, समाज में अन्तर्प्रक्रिया, स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि सभी क्षेत्रों से जुड़ी समस्याओं से जूझना पड़ता है। जब बच्चे में बुद्धि मन्दता के साथ-साथ दैनिक कार्य व्यवहार सम्बन्धी समस्या भी दृष्टिगत होती है उस स्थिति में प्रायः मानसिक विकलांगता की पहचान हो पाती है। अलग-अलग रोगियों में इसका भिन्न-भिन्न प्रतिशत मिलता है जिस आधार पर प्रायः चार स्तरों की चर्चा की जाती है।

	स्तर	मानसिक विकलांग रोगियों का प्रतिशत	वेचस्लर IQ
I	कम	85%	50-70
II	सामान्य	10%	35-49
III	ज्यादा	4%	20-34
IV	बहुत ज्यादा	1%	20 से नीचे

प्रथम स्तर के रोगियों में सामान्य लोगों की भाँति सामाजिक एवं सम्प्रेषणात्मक निपुणता होती है अतः तीसरी या चौथी कक्षा में पहुँचने पर ही इनकी विकलांगता की जानकारी होती है। प्रायः ये बच्चे बिना किसी बाह्य सहायता के कक्षा छह तक शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। इसके बाद इन्हें सहायता की आवश्यकता होती है। विशेष प्रकार के शिक्षण कार्यक्रमों द्वारा ये इस तरह का कोई न कोई काम सीख सकते हैं जिससे इनकी स्वयं की जीविका चल सके। दूसरे स्तर में वे बच्चे आते हैं जो उचित समय में बोलना एवं बातचीत करना सीख लेते हैं किन्तु सामाजिक परम्पराएँ सीखना इनके लिए कठिन होता है। प्रायः कक्षा दो तक ही शिक्षा ग्रहण करना इनकी सीमा में होता है। व्यावसायिक कुशलता सम्बन्धी शिक्षण इनके लिए उपयोगी होता है। अपनी परिचित जगहों पर ये अकेले आ जा सकते हैं तथा संरक्षित वातावरण में कुशल या अर्धकुशल कारीगर की भाँति अपना भरण-पोषण कर सकते हैं। मानसिक मंदन के अगले स्तर के रोगी बच्चों में भाषा का विकास लगभग नहीं के बराबर होता है। विशेष प्रकार के स्कूलों में प्रशिक्षण प्राप्त करने पर ये अपने दैनिक कार्य और स्वयं की साफ-सफाई (जैसे-दाँत साफ करना, मलमूत्र त्यागना आदि) तथा बहुत थोड़ी बातचीत करना सीख लेते हैं। व्यावसायिक प्रशिक्षण से इन्हें लाभ पहुँचता है। इस स्तर के कुछ रोगी

प्रशिक्षित/अकुशल तथा अत्यन्त सरल काम किसी व्यक्ति की निगरानी में कर लेते हैं। अत्यधिक मानसिक मंदन की कोटि में आने वाले रोगी सरल से सरल गत्यात्मक कार्य करने की भी क्षमता नहीं होती। यही नहीं किसी को देख कर काम सीखना भी इनके लिए सम्भव नहीं होता है। ये शारीरिक तौर पर भी पूर्ण विकसित नहीं होते हैं और इनमें केन्द्रीय स्नायु तन्त्र सम्बन्धी समस्याएँ भी होती हैं। रोग से लड़ने की ताकत कम होने के कारण इन्हें शीघ्र ही संक्रमण हो जाता है। सामान्य बच्चों की तुलना में इनका जीवन काल कम होता है।

3.10 प्रमस्तिष्कीय घात cerebral palsy

गर्भावस्था, जन्म अथवा जीवन के आरम्भिक दो वर्षों में बच्चे के मस्तिष्क पर चोट लगने के कारण उत्पन्न स्नायुतांत्रिक विकार के फलस्वरूप यह मानसिक रोग होता है। इस विकार से ग्रस्त रोगी को जीवन में अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएँ चलने, बोलने, निगलने से संबंधित होती हैं। मस्तिष्क द्वारा मांसपेशियों को गलत संदेश मिलने के कारण ऐसा रोगी अनाड़ी व्यक्ति की भाँति चलता है, उसे बोलने में कठिनाई होती है या कभी-कभी निगलने में भी परेशानी होती है। अट्ठारवीं शताब्दी के मध्य काल में, अंग्रेजी डॉक्टर विलियम लिटिल ने सर्वप्रथम जन्म के समय शिशु के मस्तिष्क में लगी चोट से प्रमस्तिष्कीय घात को सम्बन्धित बताया। विश्व में इस रोग से पीड़ित बच्चों की बड़ी संख्या है। अमरीका में प्रतिवर्ष दस हजार बच्चे इस रोग से पीड़ित मिलते हैं। गर्भावस्था एवं शिशु जन्म के समय सावधानी बरतने के कारण पिछले कुछ दशकों से रोगियों की संख्या में कमी हो रही है किन्तु समय से पूर्व जन्में, कम वजन वाले बच्चों में इस रोग के लक्षण प्रायः मिलते हैं।

कभी कभी जन्म, एक वर्ष या अधिक व्यतीत हो जाने पर भी इस रोग के लक्षणों की पहचान एवं निदान नहीं हो पाता है। प्रमस्तिष्कीय घात के तीन प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं–

(i) अतितान — spastic

(ii) एन्थीटोइड — aothetoid

(iii) गतिविभ्रमी/एटैक्टिक — ataxic

कभी-कभी तीनों प्रकारों के लक्षण वाला रोगी भी मिलता है जिसे मिश्रित रूप (mixed) कहा जा सकता है। प्रमस्तिष्कीय घात से ग्रसित 60% रोगी अतितानता

(spasticity) से ग्रस्त होते हैं। माँसपेशियों में अकड़ेपन एवं संकुचन के कारण इन रोगियों में गतिविधि क्षीण हो जाती है। इस विकार का प्रमुख कारण मस्तिष्क के तंत्रिका तन्तुओं में लगी चोट है। मस्तिष्क के ऐसे तन्त्रिका तन्तु जो ऐच्छिक प्रेरक नियन्त्रण सम्बन्धी सूचनाओं का वहन करते हैं जब उनमें चोट पहुँचे तो रोगी में अतितानता के लक्षण मिलते हैं। लगभग 20% रोगी प्रमस्तिष्कीय घात के द्वितीय वर्ग में आते हैं। मांसपेशियों के संचलन को रोकने एवं उनकी गतिविधियों को नियंत्रित करने वाले तंत्रिका तन्तु में लगी चोट इसका कारण होती है और परिणाम स्वरूप रोगी की गतिविधियाँ (movements) अनियन्त्रित हो जाती हैं। 'एटाक्सिक'–प्रमस्तिष्कीय घात का यह प्रकार बहुत कम रोगियों (लगभग 1%) में देखने को मिलता है। मस्तिष्क के आधार भाग प्रमस्तिष्क (cerebellum) में लगी चोट के कारण इस रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं। प्रमस्तिष्क का कार्य शरीर के संचलन/गतिविधि में संतुलन और सुनिश्चितता बनाए रखना होता है अतः रोगी के चलते समय तथा ऊपरी अंगों में सामंजस्य स्थापित करने में बहुत कठिनाई होती है।

प्रमस्तिष्कीय घात के बहुत से रोगी मानसिक मंदता का भी शिकार हो सकते हैं किन्तु ऐसा अनिवार्य नहीं होता। इसके अतिरिक्त श्रवण दोष, भाषा उत्पादन में समस्या, मिर्गी, दृश्य दोष जैसी अनेक समस्याओं से इन रोगियों को लड़ना पड़ता है। इस प्रकार के रोगी का पूरी तरह से सामान्य होना सम्भव नहीं होता है क्योंकि नष्ट हुए मस्तिष्क तन्तु पुनः प्रजनित नहीं हो सकते हैं। यह अवश्य है कि उन तन्तुओं द्वारा होने वाले कार्य, एक सीमा तक, स्वस्थ्य कोशिकाओं एवं तन्तुओं से करवाए जा सकते हैं। फलतः इन रोगियों के अच्छे इलाज के लिए अनेक विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। एक शरीरवैज्ञानी जो नेत्र विकार और जोड़ों के संचलन सम्बन्धी लक्षणों पर ध्यान देता है। व्यवसायिक चिकित्सक जो बच्चे को दैनिक व्यवहार की क्षमता सिखाता है। भाषा रोगविज्ञानी जो भाषा एवं निगलने सम्बन्धी विकार को दूर करने का प्रयास करता है। मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षाशास्त्री जो रोगी की संवेगात्मक एवं शिक्षण समस्याओं को सुलझाता है। यही नहीं ऐसे रोगियों के खान-पान का ध्यान रखना भी अति आवश्यक होता है। इन समस्त पेशेवर लोगों के साथ-साथ परिवार के सदस्यों की सहायता से ये रोगी सार्थक एवं उपयोगी जीवन जीने में समर्थ होते हैं।

उपर्युक्त वर्णित विकारों का कारण मस्तिष्क में लगी किसी प्रकार की चोट होती है। इनके अतिरिक्त वाक् अंगों में चोट या दोष अथवा श्रवण अंग में दोष या चोट भी भाषिक विकार का कारण हो सकती है। वक्ता में तुतलाना–जैसे एक ध्वनि के स्थान पर

दूसरी का प्रयोग ('श' को 'स' या 'ट' को 'त' अथवा 'स' को 'थ' उच्चरित करना); विच्छलन—ओंठ, जिह्वा या जबड़े की निष्क्रियता के कारण उत्पन्न वाक् दोष; हकलाना—झिझक, पुनरावृत्ति के साथ ही फेफड़े से निर्गत वायु आंशिक रूप से क्षणिक तौर पर रुक जाती है आदि भाषिक दोष मिलते हैं। ढाई-तीन साल की अवस्था में इनका आरम्भ होता है किन्तु समाज और घर में बच्चे का उचित समायोजन स्थापित होने पर धीरे-धीरे ये दोष समाप्त हो जाते हैं। प्रायः गत्यात्मक नियन्त्रण हीन बालकों में क्षिप्रोच्चारण दोष मिलता है इनका भाषा विकास भी देर से होता है। श्रवण दोष होने पर बच्चा भाषा विकास के लिए अनिवार्य सुन कर ग्रहण करने वाले मौखिक प्रेरक को समझ नहीं पाता है। मानसिक मंदता के साथ-साथ बच्चे में श्रवण दोष का होना गम्भीर समस्या उत्पन्न करता है।

3.11 वाग्दोष speech disorders

ध्वनि उच्चारण अंगों में जन्म से दोष होने पर या दुर्घटनावश लगी चोट के कारण या कभी-कभी कतिपय मनोवैज्ञानिक कारणों से रोगियों में निम्न प्रकार के वाग्दोष मिलते हैं—

(i) तुतलाना lisping

ऐसा व्यक्ति भाषा बोलते समय किसी ध्वनि विशेष के स्थान पर दूसरी ध्वनि का प्रयोग करता है, जैसे--'च' की जगह 'त' 'चाचा' का 'ताता' कहना अथवा 'स' के स्थान पर 'थ' 'सारा' शब्द का 'थारा' उच्चारण करना। जबड़े, दाँत या ओंठ में विकृति होने पर यह वाग्दोष आ जाता है। कभी-कभी बच्चों की भाषा का प्रभाव दिखाने के उद्देश्य से भी वक्ता इस प्रकार का भाषा व्यवहार करता है। व्यक्ति आगे के दाँत टूट जाने पर भी थोड़े समय के लिए तुतलाने लगता है।

(ii) विच्छलन slurring

ओंठ, जिह्वा य जबड़े की निष्क्रियता के कारण जब भाषण सम्प्रवाह में अस्पष्टता आ जाती है तो उसे विच्छलित उच्चारण करते हैं। इसका कारण वाग अंगों का पक्षाघात या जिह्वा की माँशपेशी विन्यास के विकास में कमी हो सकती है। उत्तेजित होने अथवा अधिक भावुकता की स्थिति में बच्चा शब्दों को एक दूसरे से मिलाते हुए बोलता है परिणामतः उसकी भाषा स्पष्ट और साफ ढंग से उच्चरित नहीं होती है और विच्छलन की स्थिति लक्षित होती है। यही नहीं भाषा विकास के दौरान, भाषा को एक

आदत के रूप में अर्जित करने के पहले कई बच्चे विच्छलित उच्चारण करते हैं।

(iii) क्षिप्रोच्चारण दोष cluttering

कुछ लोग बहुत तेज बोलते हैं। अत्यन्त शीघ्रता से बोली गई उनकी भाषा प्रायः विच्छलित सी प्रतीत होती है। यदि वक्ता ध्यान दें तो अभ्यास से उसकी स्थिति में सुधार आ जाता है। कतिपय व्यक्तियों में यह दोष शारीरिक विकृति के परिणाम स्वरूप होता है। ऐसे बच्चों में भाषा विकास तथा अन्य गतिविधि नियन्त्रण भी देर से होता है। ऐसे रोगियों को प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जिससे उनकी स्थिति में सुधार हो जाता है।

(iv) हकलाना stuttering

जब व्यक्ति गले अथवा डायाफ्राम की माँसपेशियों में अकड़न या तनाव के कारण झिझकते हुए तथा शब्दों को बार-बार दोहराते हुए भाषा का प्रयोग करे तो इसे हकलाना कहा जाता है। यह दोष वाक् माँसपेशियों के आंशिक या पूर्ण पारस्परिक असामंजस्य के कारण श्वसन संबंधी परेशानी के फलस्वरूप होता है। कुछ स्थितियों में इसके लक्षण 'मंच-भय' से मिलते हैं जब व्यक्ति भय व मनोवैज्ञानिक तनाव के कारण यह भूल जाता है कि वह क्या कहना चाहता है और कभी-कभी हकलाने भी लगता है। वाग्दोष के रूप में ये लक्षण ढाई से साढ़े तीन वर्ष के बच्चों में मिलते हैं और जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं तथा समाज एवं घर में अच्छा सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं वैसे-वैसे ये लक्षण कम हो जाते हैं।

3.12 श्रवण दोष hearing impairment

जब हमारे कान ध्वनि को ग्रहण कर उससे सम्बन्धित सूचना केन्द्रीय स्नायुतंत्र को भेजते हैं तो यह सम्पूर्ण प्रक्रिया श्रवण/सुनना कहलाती है। श्रवण की सहायता से व्यक्ति का बाह्य संसार से सम्पर्क बना रहता है और यह भाषा सीखने का प्रमुख मार्ग है। भाषा अर्जन में श्रवण की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यही नहीं चतुर्दिक व्याप्त संसार की सूचनाएँ, उन पर नियन्त्रण, होने वाली घटनाओं आदि की जानकारी इस माध्यम से ही होती है।

श्रवण अंग में किसी प्रकार की विकृति होने पर बच्चा भाषा विकास के लिए आवश्यक मौखिक उत्तेजनाओं को ग्रहण नहीं कर पाता है फलस्वरूप उसके भाषा

विकास में बाधा पहुँचती है। सामान्य मेधा वाले बच्चे में यह स्थिति जितनी समस्या उत्पन्न करती है उससे कहीं अधिक गम्भीर समस्या का सामना मानसिक मंद बच्चों को करना पड़ता है। प्रायः विद्वान सुनने की प्रक्रिया के दो प्रकार बताते हैं। जिन्हें अंग्रेजी में 'हियेरिंग' hearing तथा 'लिस्निंग' listening दो स्वतन्त्र शब्दों से अभिव्यक्त किया जाता है। हिन्दी भाषा में दोनों के लिए श्रवण/सुनना शब्द ही मिलते हैं। 'हियेरिंग' शारीरिक प्रक्रिया है जिसमें सिर्फ सुनना समाहित है। 'लिस्निंग' एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें सुनकर समझना निहित होता है। बस में बैठा व्यक्ति आसपास की अनेक आवाजें 'ह्रियर' करता है किन्तु 'लिसन' वह अपने बगल में बैठे मित्र की बातें ही करता है। प्रायः विद्वान पाँच प्रकार की बधिरता का उल्लेख करते हैं—

(i) **चलन बधिरता**—जब व्यक्ति में वायु चालन द्वारा श्रवण में कमी हो और हड्डी चालन द्वारा श्रवण प्रभाव सीमा सामान्य हो तो इसे चालन बधिरता कहते हैं। यह बधिरता रोगी के बाह्य या मध्य कर्ण में विकृति के परिणामस्वरूप होती है।

(ii) **संवेदी तंत्रिक बधिरता**—जब वायु एवं हड्डी चालन दोनों द्वारा श्रवण में कमी हो तथा दोनों की प्रभाव सीमाएँ लगभग समान हों तो इस दोष को संवेदी तंत्रिक बधिरता कहते हैं। यह प्रायः कान के भीतरी भाग में विकृति का परिणाम होती है।

(iii) **मिश्रित बधिरता**—कभी-कभी उपरोक्त दोनों प्रकार की विकृतियाँ रोगी में दृष्टिगत होती हैं। इसे मिश्रित बधिरता की संज्ञा दी जाती है।

(iv) **केन्द्रीय बधिरता**—कभी-कभी श्रव्य आलेख सामान्य होने पर भी व्यक्ति वाक् या अन्य उत्तेजनाओं को समझने एवं प्रयोग करने में समर्थ नहीं होता है। इसे केन्द्रीय बधिरता कहते हैं।

(v) **छद्‌म बधिरता**—बधिरता न होने पर भी कभी-कभी व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है जैसे वह बधिर हो यह स्थिति छद्‌म बधिरता नाम से जानी जाती है।

❋ ❋ ❋

4.0 शैक्षणिक भाषाविज्ञान

4.1 प्रकृति एवं स्वरूप

शिक्षा में भाषा की केन्द्रीय भूमिका होती है। अध्ययन हो अथवा अध्यापन दोनों में ही भाषा सम्बन्धी विभिन्न गतिविधियाँ जैसे–पढ़ना, समझना, सुनना, लिखना, व्याख्या, पुनर्गठन आदि निमग्न/समाहित होती हैं।

भाषाविज्ञान भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन कहलाता है जो समस्त सामाजिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियों में प्रयुक्त भाषा के विविध रूपों का अध्ययन करता है। अतः कक्षा तथा घर-परिवार में अपनों के बीच शिक्षार्थी द्वारा प्रयोग किया गया भाषा रूप भी भाषाविज्ञान की अध्ययन परिसीमा में आता है क्योंकि ये परिस्थितियाँ प्रयोक्ता के भाषा ज्ञान को कहीं न कहीं प्रभावित अवश्य करती हैं। भाषा एवं शिक्षा के जटिल सम्बन्धों पर प्रकाश डालने वाली, भाषा शिक्षण एवं भाषा अधिगम सम्बन्धी सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने वाली भाषाविज्ञान की शाखा शैक्षणिक भाषाविज्ञान (educational linguistics) कहलाती है। कृष्णास्वामी एवं एस.के. वर्मा के विचारानुसार,

``educational linguistics is interested in exploring the complex relation between language and education without over simplifying them."

हैलिडे के मतानुसार, ``educational linguistics attempts to develop a model of language that is relevent to language teaching and learning."

डेविड क्रिस्टल के अनुसार, ``... the application of linguistic theories, methods and descriptive findings to the study of the teaching/ learning of a native language in both spoken and written formes

in school or other educational settings, more broadly to all teaching contexts is called educational linguistics."

स्पष्ट है कि भाषा का शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है? विद्यालय में मिलने वाली सफलता/असफलता कहाँ तक भाषा पर निर्भर करती है? शिक्षा के स्तर पर असफल व्यक्ति कैसे अन्य क्षेत्रों में सफल होता है? यदि माता-पिता की भाषा बच्चे की भाषा को एक निश्चित आकार देती है तो जीवन का महत्त्वपूर्ण समय स्कूल में व्यतीत करने वाला बच्चा क्या अपने शिक्षक की भाषा से प्रभावित नहीं होता? द्विभाषिकता एवं बहुभाषिकता का शैक्षिक क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है? सामान्य बोलचाल की भाषा तथा विभिन्न विषयों की भाषा में क्या सम्बन्ध है? इस प्रकार के अनेकानेक प्रश्नों के उत्तर एवं इन परिप्रेक्ष्यों में भाषा का वर्णन और विश्लेषण ही शैक्षणिक भाषाविज्ञान का विषय क्षेत्र है।

भाषाविज्ञान तथा शिक्षा के अन्तर्सम्बन्ध से विकसित इस शाखा का सम्बन्ध भाषाविज्ञान की अन्य शाखाओं से भी है। इसके अन्तर्गत विद्यालय और कक्षा के दायरे में प्रयुक्त भाषा रूपों का अध्ययन अध्यापन होता है और ये दोनों ही क्षेत्र समाज के अंग हैं अतः इसे समाज भाषाविज्ञान से सम्बन्धित कहा जा सकता है। शैक्षणिक भाषा विज्ञान के पूर्ण अध्ययन के लिए मनोभाषाविज्ञान की सहायता भी आवश्यक है। प्रत्येक मानव भाषा अर्जन एवं उत्पादन में संलग्न रहता है और अपनी इस भाषिक सामर्थ्य को सीखे और सिखाए गए अनुभवों से हटकर कक्षा एवं समाज की भिन्न परिस्थितियों में प्रयुक्त करता है। यही नहीं कक्षा का सम्बन्ध पाठ (text) से होने के कारण इस शाखा का सम्बन्ध प्रोक्ति विश्लेषण से भी माना जाता है।

पाश्चात्य एवं प्राच्य दोनों ही देशों में भाषा शिक्षण की परम्परा अत्यन्त प्राचीन रही है। आरम्भ में इसे व्याकरण अध्ययन-अध्यापन से सम्बद्ध माना गया। भाषा तथा भाषा शिक्षण प्रक्रिया की प्रकृति से सम्बन्धित विषयों पर अनेक विद्वानों ने अपने-अपने विचार प्रस्तुत किए। सोलहवीं एवं सत्रहवीं शताब्दी में हुए कार्यों में दो भिन्न विचारधाराएँ दृष्टिगत होती हैं। व्यापार के विकास के साथ-साथ नए-नए उपनिवेशों की स्थापना, सामाजिक महत्त्वाकांक्षाएँ आदि कारणों से 'भाषा' को आवश्यकता की पूर्ति हेतु प्रयोग किया गया। यूरोप में राजनैतिक परिवर्तनों के कारण पाँच सौ वर्ष पूर्व प्रभुता को प्राप्त लैटिन का स्थान धीरे-धीरे अँग्रेजी, फ्रेंच और इतालवी ने ले लिया। लैटिन एक जीवित भाषा के स्थान पर पाठ्य सामग्री का अंग बन गई। दीर्घकाल तक लैटिन व्याकरण के नियमों का अध्ययन-अध्यापन करना अपने में एक पूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति

माना गया। समय के साथ व्याकरण/भाषा अध्ययन के इस प्रारूप का प्रयोग अन्य यूरोपीय भाषाओं के लिए भी किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी में रचित व्याकरण पाठ्य पुस्तकों में भाषा सम्बन्धी नियम और नियम को स्पष्ट करने वाले उदाहरण साथ-साथ दिए गए जिससे शिक्षार्थी उन्हें समझकर कंठस्थ कर सकें।

बीसवीं शताब्दी में भाषा विश्लेषण की संरचनात्मक पद्धति प्रकाश में आई। विद्वानों ने लिखित भाषा की तुलना में बोलचाल के रूप को अधिक महत्त्वपूर्ण माना और उसके वर्णन-विश्लेषण पर बल दिया। भाषा शिक्षण के क्षेत्र में भी व्यवहारवादी सिद्धान्त का प्रभाव पड़ा। अभिरचना अभ्यास और क्रमिक अधिगम इस काल की प्रमुख विशेषताएँ कही जा सकती हैं। कक्षाध्यापन के स्तर पर भाषा प्रयोगशाला तथा श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग इसी युग की देन है। रूपान्तरण एवं प्रजनक व्याकरण के प्रणेता चॉमस्की ने भाषाशिक्षण के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। 1957 में अपनी अन्य भाषिक प्रमेयों की स्थापना के साथ-साथ चॉमस्की ने इस तथ्य पर बल दिया कि भाषा जटिलता को देखते हुए यह कहना उचित नहीं होगा कि भाषा अर्जन आदत या अभ्यास का परिणाम है। उनके अनुसार प्रत्येक मानव में एक सहज, अन्तर्जात क्षमता होती है जिसके कारण वह भाषा की आधारिक संरचना को अन्तरीकृत कर लेता है। परिणामस्वरूप वह ऐसे असंख्य नवीन वाक्यों को बोलने व समझने में समर्थ होता है जो न उसने पहले कभी बोले या सुने हों। चॉमस्की ने भाषा शिक्षण के स्थान पर अधिगम को अधिक महत्त्व दिया और भाषा शिक्षण का केन्द्र पाठ्य सामग्री न होकर शिक्षार्थी को माना तथा उसकी आवश्यकतानुसार विधियाँ एवं सामग्री बनाई गईं। वर्तमान भाषा शिक्षण के क्षेत्र में दो भिन्न दिशाओं की चर्चा मिलती है-

(i) मातृभाषा / प्रथम भाषा शिक्षण

(ii) विदेशी भाषा / द्वितीय भाषा शिक्षण

आज इन दोनों ही क्षेत्रों में कार्य हो रहे हैं। ध्यान रहे कि भाषा शिक्षण का केन्द्र न तो शिक्षक होता है और न ही शिक्षण प्रणाली वरन् भाषा का प्रयोक्ता और भाषा शिक्षण का केन्द्रक 'शिक्षार्थी' कहा जा सकता है। मातृ भाषा या प्रथम भाषा के सन्दर्भ में वह सहज स्वाभाविक तरीके से अप्रत्यक्ष रूप से अनौपचारिक (घर-परिवार-बाहर) वातावरण में भाषा सीख लेता है जबकि विदेशी या द्वितीय भाषा के सन्दर्भ में वह नियन्त्रित और औपचारिक (कक्षा में) वातावरण में, प्रत्यक्ष रूप से, सप्रयास शिक्षक

की सहायता से भाषा सीखता है। किन्तु कोई भी शिक्षार्थी (भाषा प्रयोक्ता के रूप में) न तो अपने चतुर्दिक वातावरण से अलग स्वायत्त, स्वतन्त्र इकाई के रूप में देखा जा सकता है और न ही भाषा शिक्षण तंत्र की प्रकृति एवं बनावट से स्वतन्त्र हो कर चल सकता है। किसी समाज की आर्थिक सामाजिक स्थिति, सरकार की शिक्षा एवं भाषा नीतियाँ, स्कूल का ढाँचा, शिक्षक की योग्यता आदि अनेक बिन्दु भाषा शिक्षण के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों को प्रभावित करते हैं।

4.2 भाषा शिक्षण की प्रमुख विधियाँ

भाषा शिक्षण के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन इस तथ्य का संकेतक है कि विकास के साथ विद्वानों ने भाषा शिक्षण की भिन्न-भिन्न विधियों का प्रयोग किया। समय-समय पर शिक्षण कार्य के लिए जिन विधियों का प्रयोग किया गया उनका संक्षिप्त परिचय निम्नवत है–

(i) व्याकरण-अनुवाद विधि grammar-translation method

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में कार्ल प्लॉज, ऑलैनडॉर्फ आदि जर्मन विद्वानों ने इस पद्धति का भाषा शिक्षण में प्रयोग किया। यूरोप में विदेशी भाषा शिक्षण के क्षेत्र में इसका तथा इसके कतिपय परिवर्तित प्रारूपों का दीर्घकाल तक प्रचार रहा। यह पद्धति किसी भाषा के व्याकरण के विस्तृत वर्णन के आधार पर भाषा सीखने पर बल देती है। भाषा के व्याकरणिक नियमों को सीख कर शिक्षार्थी अपनी मातृ भाषा के वाक्यों और पाठों का लक्ष्य भाषा में अनुवाद करता है तथा लक्ष्य भाषा की सामग्री को मातृ भाषा में अनूदित करता है। स्टर्न के अनुसार,

``the first language is maintained as the reference system in the acquisition of the second language."

व्याकरण-अनुवाद पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(क) विदेशी भाषा अध्ययन का उद्देश्य भाषा सीखना है जिससे उस भाषा का साहित्य पढ़ा जा सके तथा लक्ष्य भाषा में हुए बौद्धिक विकास को समझा जा सके।

(ख) भाषा शिक्षण के लिए भाषा बोलने और समझने की तुलना में लिखना-पढ़ना अनिवार्य है।

(ग) इस विधि में अनुवाद पर विशेष बल दिया गया। मूल भाषा से लक्ष्य भाषा में

अनुवाद अभ्यास भाषा शिक्षण की अनिवार्यता मानी गई।

(घ) मूल प्रकृति में निर्देशात्मक (prescreptive) होने के कारण ये व्याकरण शुद्धता का विशेष ध्यान रखते हैं तथा इनकी पद्धति निगमनात्मक थी।

(च) व्याकरण-अनुवाद पद्धति ने इस तथ्य को रेखांकित किया कि शिक्षार्थी को व्याकरण का ज्ञान उसकी मातृभाषा के माध्यम से कराया जाए।

(ii) प्रत्यक्ष विधि direct method

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते व्याकरण अनुवाद पद्धति की आलोचना तथा खण्डन होने लगा। विदेशी भाषाओं के मौखिक रूप की जानकारी पर अधिक जोर दिया गया। प्रत्यक्ष विधि का उद्देश्य था कि शिक्षार्थी लक्ष्य भाषा में 'सोचना' शुरू करे। इस विधि की शैक्षणिक पद्धति निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधृत थी–

(क) शिक्षण प्रक्रिया एक प्रकार की साहचर्य बनाने की क्रिया है। इसमें वाक् का उचित क्रियाओं के साथ तथा शब्दों का अवधारणाओं और वस्तुओं के साथ साहचर्य स्थापित किया जाता है। ध्यान रहे कि साहचर्य प्रत्यक्ष, मूर्त और निश्चित हो।

(ख) साहचर्य स्थापना के लिए पुनरावृत्ति आवश्यक होती है किन्तु शिक्षार्थी का ध्यान और रुचि भी शिक्षण के लिए अनिवार्य तत्त्व हैं।

(ग) कक्षा में लक्ष्य भाषा में ही निर्देश दिए जाएँ।

(घ) आरम्भ में दिनप्रतिदिन व्यवहार में प्रयोग किए जाने वाले शब्द सिखाए जाएँ। वाक्यों का शिक्षण वार्तालाप शैली में हो।

(च) प्रत्येक नवीन संरचनात्मक नियम पहले मौखिक रूप में सिखाया जाए।

(छ) मूर्त शब्दावली को वस्तुओं, तस्वीरों के माध्यम से और अमूर्त को किसी विचार से साहचर्यित कर सिखाया जाए।

(ज) इस पद्धति में उच्चारणगत शुद्धता पर विशेष बल दिया गया।

यूरोप में यह शिक्षण पद्धति बहुत प्रसिद्ध हुई और अनेक विद्वानों ने इसे अपनाया। ब्रिटिश भाषाविद् हैनरी स्वीट ने इसकी सीमाओं को पहचान कर इसमें

सुधार के सुझाव दिए किन्तु पद्धतिगत सुनिश्चितता के अभाव तथा अनेक केन्द्रीय बिन्दुओं का उल्लेख न होने के कारण स्वीट आदि भाषाविदों ने नवीन शिक्षण विधियों के विकास की बात आरम्भ की जो पूर्व विधि के विपरीत सिद्धान्तों पर आधारित थी तथा मौखिक विधि नाम दिया गया।

(iii) मौखिक विधि oral method

पामर, हार्नबी आदि ब्रिटिश भाषाविदों ने भाषा शिक्षण की इस पद्धति का विकास किया जिसमें 'चयन' के व्यवस्थापरक सिद्धान्तों (जिनके माध्यम से कोशीय व व्याकरणिक सामग्री को चुना जाता है), 'स्तरण' (ऐसे सिद्धान्त जो सामग्री की व्यवस्था एवं क्रमबद्धता के निर्धारण में सहायता देते हैं) और 'प्रस्तुतीकरण' (पाठ्य सामग्री में अभ्यास रचनाओं को प्रस्तुत करने की विधियाँ) पर बल दिया गया और इस विधि को मौखिक विधि नाम से अभिहित किया गया। इस पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. भाषा शिक्षण मौखिक भाषा से आरम्भ होता है। इसके अन्तर्गत पाठ्य सामग्री को लिखित रूप में प्रस्तुत करने के पूर्व ही मौखिक रूप में शिक्षार्थी को सिखा दिया जाता है।
2. कक्षा में लक्ष्य भाषा का ही प्रयोग किया जाए।
3. भाषा सम्बन्धी नवीन बिन्दुओं को सन्दर्भ से जोड़ कर प्रस्तुत करना एवं उनका अभ्यास कराना इसका उद्देश्य था।
4. शब्दावली चयन करते समय यह ध्यान रखा गया कि दैनिक व्यवहार में आने वाली शब्दावली का पहले चयन किया जाए।
5. स्तरीकरण के आधार पर पहले सरल व्याकरणिक नियम और बाद में जटिल नियमों का शिक्षण किया जाए।
6. शिक्षार्थी जब अनेक कोशीय एवं व्याकरणिक पक्षों को सीख जाए तब भाषा का पठन और लेखन आरम्भ किया जाए।

मौखिक विधि और प्रत्यक्ष विधि में सतही समानता प्रतीत होती है जो समान होने का भ्रम उत्पन्न करती है। मौखिक प्रक्रियाओं का प्रयोग करने पर भी प्रत्यक्ष विधि में व्यवस्थापरक आधार की कमी थी।

(iv) श्रव्यदृश्य पद्धति audio - lingual method

द्वितीय विश्व युद्ध के समय अमरीकी सेना के जवानों को शीघ्रातिशीघ्र दूसरी भाषाएँ सिखाने के लिए अनेक प्रयोग हुए। अमरीका में सैनिकों के लिए बहुत से भाषा शिक्षण अभ्यास कार्यक्रम शुरू हुए। ब्रिटिश विद्वानों द्वारा विकसित मौखिक विधि में सुधार कर अमरीकी भाषाविदों ने भाषा शिक्षण विधि को नवीन दिशा दी। यह पद्धति 'संरचनात्मक-मौखिक-संदर्भपरक उपागम' के नाम से जानी गई। यह निम्न सिद्धान्तों पर आधारित है–

1. भाषा आधारिक रूप में वाक् है। अतः इन्होंने मौखिक अभ्यास पर बल दिया।
2. कोई भी भाषा आदतों का समुच्चय है और आदत अभ्यासजन्य होती है अतः पुनरावृत्ति की प्रक्रिया भाषा शिक्षण के लिए उपयोगी है।
3. एक मातृभाषाभाषी जो भी बोलता है वह भाषा है न कि वह रूप जो लोग समझते हैं कि उसे बोलना चाहिए।
4. कक्षा में भाषा सिखाएँ भाषा के बारे में नहीं।
5. भाषाओं में विविधता होती है। उनमें प्राप्त समानताओं और विषमताओं का अध्ययन सम्भव है।

ध्यान दें कि ये सभी सिद्धान्त व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक स्किनर तथा अमरीकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड के स्पष्ट प्रभावस्वरूप इस पद्धति में स्वीकारे गए। इसके अतिरिक्त मौखिक पद्धति की विशेषताएँ भी इनके सिद्धान्त में समाहित हैं। कक्षा अध्यापन के स्तर पर श्रव्य-दृश्य सामग्री का प्रयोग इसी विधि की देन अतः इसे 'श्रव्य-दृश्य पद्धति' नाम भी दिया गया। ब्लूमफील्ड ने भाषा के स्तरीकरण की चर्चा करते हुए भाषा को–स्वन, रूपरचना, वाक्य रचना एवं अर्थ जैसे स्तरों पर वर्गीकृत किया। श्रव्य-दृश्य पद्धति भी प्रत्येक 'भाषा कौशल' को अलग-अलग रखने के पक्ष में है, जैसे-श्रवण, बोलना, पढ़ना और लिखना। इनमें से भी सुनने एवं बोलने पर विशेष बल दिया गया। यह पद्धति पाठ्य सामग्री को कंठस्थ करने, उसका शुद्ध उच्चारण, अभिरचना अभ्यास आदि पर अधिक ध्यान देती है।

(v) संप्रेषणपरक भाषा शिक्षण पद्धति communicative language-teaching method –

चॉम्स्की ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सिन्टेकटिक स्ट्रक्चर्स' में यह प्रतिपादित किया

है कि संरचनात्मक पद्धति भाषा के प्रमुख अभिलक्षणों-सर्जनात्मकता तथा सहजातीयता को रेखांकित करने में असमर्थ है। इसी समय कतिपय ब्रिटिश भाषाविदों ने भाषा की प्रकार्यात्मक प्रकृति तथा सम्प्रेषणपरक क्षमता पर बल दिया और कहा कि भाषा शिक्षण का उद्देश्य मात्र भाषा संरचनाओं का ज्ञान नहीं वरन लक्ष्य भाषा में कुशल सम्प्रेषण दक्षता प्राप्त करना है। इस मत का समर्थन करने वाले विद्वान क्रिस्टोफर कैंडलीन और हैनरी विडोसन जहाँ एक ओर ब्रिटिश भाषाविद् जे.आर. फर्थ तथा हैलिडे के कार्यों से प्रभावित थे वहीं दूसरी ओर अमरीकी समाजभाषाविद् हाइम्ज़, गम्पर्ज और लैवब के सिद्धान्तों से भी परिचित थे। हाइम्ज़ के मतानुसार भाषा शिक्षण का उद्देश्य शिक्षार्थी में सम्प्रेषणपरक दक्षता का विकास है। चॉमस्की के दक्षता सिद्धान्त के आधार पर हाइम्ज़ ने इस संकल्पना की चर्चा की। इस पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

1. इसमें अर्थ को अधिक महत्त्व दिया गया।
2. भाषा का उच्चारण जनग्राह्य हो उसमें अतिशुद्धता की आवश्यकता नहीं है।
3. भाषा सीखने से तात्पर्य सम्प्रेषण सीखना है।
4. अभ्यास को केन्द्रीय महत्त्व न दे उसे द्वितीयक विधि के रूप में स्वीकारा गया।
5. भाषिक रूपों को कंठस्थ करने की तुलना में उसके सम्प्रेषणपरक रूप पर ध्यान केन्द्रित किया गया।
6. कक्षा में मातृभाषा का थोड़ा बहुत प्रयोग किए जाने पर आपत्ति नहीं की गई।
7. शिक्षण का उद्देश्य लक्ष्य भाषा में सम्प्रेषणपरक दक्षता को प्राप्त करना है अर्थात् भाषा को प्रभावशाली एवं उचित ढंग से प्रयोग करने की क्षमता प्राप्त करना।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि विकास के साथ साथ भाषा शिक्षण की विधियों में परिवर्तन होता गया। व्याकरण-अनुवाद विधि की अव्यवहारिकता के विरोध में प्रत्यक्ष विधि आई जिसके परिमार्जित रूप को मौखिक विधि का नाम दिया गया। जिस भाषावैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक अन्तर्दृष्टि पर यह आधारित थी उसको भाषाविज्ञान की संरचनात्मक धारा से बल मिला। इसी श्रृंखला की अगली कड़ी सम्प्रेषणपरक विधि है। ध्यान रहे तकनीकगत भिन्नता होने पर भी ये सभी पद्धतियाँ वस्तुतः एक जैसी मान्यताओं पर ही आधारित हैं।

4.3 व्यतिरेकी विश्लेषण एवं भाषा शिक्षण

दो या दो से अधिक वस्तुओं, उपादानों, विचारों या कथनों की तुलना उनके मध्य प्राप्त समानता या विषमता का ज्ञान कराती है। समानता संकेत करती है जुड़ाव की ओर जबकि विषमता उनको छिन्न-भिन्न करने का कार्य करती है। व्यतिरेक का अर्थ है 'विरोध' जिसका सम्बन्ध वियोजन से होता है। व्यतिरेकी विश्लेषण दो या अधिक भाषाओं के मध्य प्राप्त संरचनात्मक समानताओं के आधार पर विषमताओं को निर्धारित करता है। विश्लेषण कर्ता किसी अध्येय भाषा की संरचना का विश्लेषण कर उसकी तुलना दूसरी भाषा की संरचना से करता है। इस तुलना द्वारा उसे दोनों भाषाओं में प्राप्त समानताओं का ज्ञान होता है। भाषाओं में प्राप्त संरचनागत ये समानताएँ स्वतः ही असमानताओं या व्यतिरेक के बिन्दुओं को उद्घाटित करती हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण में समकालिक तुलना पर बल दिया जाता है और वर्तमान समय में भाषा की जैसी व्यवस्था/संरचना है उसकी तुलना की जाती है। दो या अधिक भाषाओं के द्विकालिक तुलनात्मक अध्ययन का उद्देश्य भाषा परिवार का निर्माण करना, भाषा पुनर्गठन करना आदि होता है और इस प्रकार के अध्ययन ऐतिहासिक-तुलनात्मक कहलाते हैं। स्पष्ट है कि व्यतिरेकी विश्लेषण तुलनात्मक भाषाविज्ञान से प्रकृतिगत भिन्नता रखता है। इसमें अध्ययनकर्ता का ध्यान भाषा की वर्तमान संरचना पर केन्द्रित रहता है, उसके ऐतिहासिक रूप या अन्य भाषाओं से उसके सम्बन्ध पर ध्यान नहीं दिया जाता है। जबकि तुलनात्मक अध्ययन तुलनीय भाषाओं के कालक्रमिक विकास को भी अध्ययन के केन्द्र में रखता है। व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा की जाने वाली समकालिक तुलना भाषा के किसी एक संरचनात्मक स्तर यथा- स्वनप्रक्रियात्मक या रूपरचनात्मक आदि अथवा समस्त स्तरों (जैसे—स्वन, रूप, वाक्य, अर्थ, संस्कृति) पर की जाती है। यही नहीं जहाँ दो या अधिक भाषाओं के मध्य व्यतिरेकी विश्लेषण किया जाता है वहीं एक भाषा के विविध बोली रूपों के मध्य प्राप्त समानता व असमानता की चर्चा भी की जा सकती है। इस विश्लेषण हेतु भाषाविद् भाषाओं की समकालिक तुलना के लिए प्रचलित प्रारूपों में से किसी का भी चयन कर सकते हैं। पारम्परिक, संरचनात्मक, प्रजनक आदि किसी एक प्रारूप के आधार पर अध्ययनकर्ता दो भाषाओं में प्राप्त विषमताओं को रेखांकित करता है।

सन् 1940 में मिशिगन विश्वविद्यालय के इंग्लिश लैंग्वेज इंस्टीट्यूट ने अन्य भाषाभाषियों को अंग्रेजी सिखाने के लिए विशेष पाठ्य सामग्री प्रकाशित की जिसे व्यतिरेकी विश्लेषण की पहली नींव कहा जा सकता है। व्यतिरेकी विश्लेषण के उदय

का काल 1953 में हॉगेन एवं वाइनरिख द्वारा किए गए द्विभाषिकता के अध्ययन से माना जाता है किन्तु इसे सैद्धान्तिक आधार देने का श्रेय राबर्ट लेडो को जाता है। जिन्होंने 1957 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक्स अक्रॉस कल्चर्स' में अपने पूर्ववर्ती विद्वान फ्राइस के मत को आधार बनाकर यह स्पष्ट किया कि दो भाषाओं की व्यवस्थित तुलना द्वारा समान, असमान और अर्धसमान संरचनात्मक तत्वों का ज्ञान किया जा सकता है। फ्राइस का विचार था कि दो व्यवस्थाओं का सम्पर्क एक नवीन अधिव्यवस्था को जन्म देता है जिसमें दोनों भाषाओं की सम्मिलित व्यवस्था दृष्टिगत होती है। कतिपय विद्वानों ने व्यतिरेकी अध्ययन का मूल बीज अमरीकी भाषाविद् फ्रॉज बोआज के कार्यों में माना है। 1889 में बोआज ने द्वितीय भाषा की ध्वनियों के शिक्षण में मातृ भाषा की ध्वनियों की भूमिका को रेखांकित किया। उनके विचारानुसार दूसरी भाषा सीखने वाला व्यक्ति नई भाषा की ध्वनियों को पहले सीखी गई भाषा के सन्दर्भ में ही ग्रहण करता है। लगभग दस वर्ष उपरान्त हैनरी स्वीट ने भी इसी तथ्य को पुनः रेखांकित किया। 1930 के लगभग प्रकाश में आए, प्राग् सम्प्रदाय के अधिष्ठाता वी. मैथेसियस के सिद्धान्त से भी व्यतिरेकी अध्ययन के आरम्भ को जोड़ा जाता है। इनके मतानुसार किसी भाषा की सम्पूर्ण संरचनात्मक व्यवस्था को ज्ञात करने के लिए अन्य भाषाओं से उसकी तुलना अनिवार्य होती है।

द्वितीय विश्व युद्ध के समय युद्ध सैनिकों के लिए अन्य भाषा शिक्षण की अनिवार्यता के कारण तत्कालीन विद्वानों ने भाषाओं के व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर शिक्षण सामग्री का निर्माण किया जो अत्यन्त प्रभावशाली व उपयोगी सिद्ध हुई। फलस्वरूप व्यतिरेकी विश्लेषण के निष्कर्षों का अनुप्रयोग भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में होने लगा। मातृ भाषा अर्जन के समय बच्चे के मस्तिष्क में किसी भी भाषा की संरचना नहीं होती किन्तु द्वितीय भाषा अधिगम के समय स्थिति भिन्न होती है। मातृ भाषा की संरचना व नियम उसके मस्तिष्क में अवस्थित रहते हैं। अतः जहाँ दोनों भाषाओं के मध्य समानता होती है वहाँ कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती है किन्तु जहाँ दोनों भाषाओं की संरचना में विषमता होती है वहाँ पहले सीखे गए नियम व्याघात उपस्थित करते हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा अध्ययनकर्ता इन्हीं विषमताओं का पता लगा कर सम्भावित कठिनाई वाले क्षेत्र के विषय में पूर्वानुमान करता है और तदनुसार पाठ-सामग्री का निर्माण करता है।

स्पष्ट है कि व्यतिरेकी विश्लेषण द्वितीय भाषा शिक्षण के सन्दर्भ में व्याघात की संकल्पना को महत्त्व देता है। कोई भी दो भाषाएँ पूर्णतः समान नहीं होती हैं उनमें

संरचना के प्रत्येक स्तर पर कुछ न कुछ भिन्नता मिलती है। व्यक्ति द्वारा मातृभाषा के रूप में अर्जित भाषा एक आदत बन, उसके व्यवहार का अंग बन जाती है। दूसरी भाषा सीखने के समय व्यक्ति स्वभावतः अपनी मातृभाषा के नियमों को दूसरी भाषा पर प्रक्षेपित करता है। दूसरे शब्दों में मातृ भाषा के नियम (जो आदत बन चुके हैं) नई भाषा पर लागू होने लगते हैं, इसे ही 'व्याघात' की संज्ञा दी जाती है। व्यतिरेकी विश्लेषण दोनों भाषाओं की तुलना के आधार पर उनमें प्राप्त समानता और असमानता के बिन्दुओं को उजागर करता है। दो भाषाओं के मध्य प्राप्त विषमताएँ ही व्याघात का कारण होती हैं अतः इनके कारण द्वितीय भाषा सीखने में कठिनाई आती है। इन कठिनाइयों को अगर दूर करना है तो दोनों भाषाओं में प्राप्त असमानताओं का पता लगाना अनिवार्य है और ज्ञात वैषम्य की सहायता से तैयार किया गया व्याकरण एवं अध्ययन सामग्री का निर्माण भाषा शिक्षण की प्रक्रिया को सरल बना देता है। ऐसा व्याकरण 'शिक्षक का व्याकरण' होता है जो शिक्षक को सूचना देता है कि शिक्षार्थी भाषा सीखने में कहाँ ज्यादा कठिनाई का अनुभव करेगा और कहाँ कम। ध्यान रहे कि यद्यपि व्यतिरेकी विश्लेषण एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है किन्तु दो भाषाओं की संरचना में प्राप्त असमानताओं पर आधारित द्वितीय भाषा के व्याकरण की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं।

4.4 द्वितीय भाषा अधिगम/शिक्षण

मातृभाषा या प्रथम भाषा (भा$_1$) अर्जन के उपरान्त बच्चा जिस भाषा को सप्रयास सीखता है उसे द्वितीय भाषा (भा$_2$) तथा उसे सीखने की प्रक्रिया को द्वितीय भाषा अधिगम कहते हैं। पिड कार्डर के मतानुसार, ``Language learning, i.e. learning a second language normally starts at a later stage, when language performance has already become established and when many other physical and mental processes of maturation are complete or nearing completion" आज के युग में बहुत से बच्चे दो भाषाओं को मातृभाषा के समान अर्जित करते हैं क्योंकि उनके माता-पिता भिन्न-भिन्न भाषाभाषी होते हैं। ऐसे बच्चे मातृ भाषाओं के बाद जो भाषा सीखते हैं वह द्वितीय भाषा कहलाती है। प्रायः मातृभाषा की योग्यता-क्षमता भा$_2$ से अधिक होती है। द्वितीय भाषा अर्जन के अध्ययन विश्लेषण में भाषा के वर्णन के साथ-साथ सीखने वाले की आयु, भा$_2$ से सम्पर्क की स्थितियाँ, सीखने के प्रेरक कारण, अन्य भाषाओं की जानकारी आदि कारकों का ज्ञान भी आवश्यक होता है। विद्वानों का मानना है कि प्रत्येक भाषा विचारों

जाता है कि उसके ज्ञान की प्रकृति क्या है? उसके द्वारा की गई त्रुटियों के वर्णन एवं विश्लेषण से यह जानकारी प्राप्त हो सकती है कि कौन से भाषिक बिन्दु उसके भाषा शिक्षण में बाधा पहुँचा कर समस्या उत्पन्न कर रहे हैं। इस दृष्टि से देखें तो त्रुटियों का विश्लेषण व्यतिरेकी विश्लेषण की भाँति ही सूचना प्रदान करता है। डेविड क्रिस्टल के मतानुसार, ``Error analysis is a technique for identifying, classifying and systematically interpreting the unacceptable forms produced by someone learning a foriegn language, using any of the principles and procedures provided by linguistics."

द्वितीय भाषा शिक्षण प्रक्रिया में भाषा सीखने वाला व्यक्ति भाषिक नियमों द्वारा नियन्त्रित एक 'अन्तर भाषा' सीखता है जो मातृ भाषा एवं लक्ष्य भाषा से परिचालित होती है तथा जो दोनों के नियमों के आधार पर त्रुटिपूर्ण कही जा सकती है। भाषा सीखने वाले व्यक्ति के ऐसे अशुद्ध प्रयोग जो लक्ष्य भाषा के अनुसार न हों और 'अन्तर भाषा' का अंग हों, उनका विश्लेषण त्रुटि विश्लेषण में किया जाता है।

ऐतिहासिक क्रम में भाषा शिक्षण के सन्दर्भ में त्रुटि विश्लेषण का विकास व्यतिरेकी विश्लेषण की प्रतिक्रिया के रूप में माना जाता है। व्यतिरेकी विश्लेषण के समर्थकों के विचारानुसार यह भाषा शिक्षण में आगत कठिनाइयों का पूर्वानुमान कर पाठ्य सामग्री एवं शिक्षण पद्धति निर्माण में सहायक होती है। इसके विपरीत त्रुटि विश्लेषकों का मानना है कि व्यतिरेकी विश्लेषण समस्त त्रुटियों को नहीं पकड़ पाता है। अतः छात्र द्वारा की गई त्रुटियों को आधार बनाकर किया गया विश्लेषण और उसके आधार पर बताए गए निदान के तरीके अधिक उपयुक्त होते हैं। कह सकते हैं कि व्यतिरेकी विश्लेषण निवारक विधि है जब कि त्रुटि विश्लेषण निदानात्मक विधि। प्रथम का केन्द्र भाषा का रूपात्मक पक्ष है तथा दूसरे का क्षेत्र रूपात्मक, अर्थपरक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पक्षों तक फैला है।

विश्लेषण के दौरान प्राप्त त्रुटियों को निम्न वर्गों में रखा जा सकता है—

(i) **मातृभाषा व्याघात के कारण उत्पन्न त्रुटियाँ**—नवीन भाषा सीखने वाले के मस्तिष्क में पहले से स्थित मातृ भाषा की संरचना उसके शिक्षण कार्य में व्याघात डालती है फलस्वरूप वक्ता त्रुटियाँ करता है। यही कारण है कि हिन्दी वक्ता अनेक अंग्रेजी शब्दों का उच्चारण करते समय उन्हें हिन्दीवत कर देता है।

और जिन अर्थों में वह अपने दैनिक जीवन में अपनी मातृ भाषा का प्रयोग करता है वह 'विविधता' एवं 'सार्थकता' द्वितीय भाषा प्रयोग में नहीं मिलती है।

कोई भी व्यक्ति द्वितीय भाषा अधिगम निष्प्रयोजन नहीं करता है। उसको सीखने के पीछे उसका कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। जब अन्य भाषा अधिगम सिर्फ ज्ञान वृद्धि के रूप में किया जाए और सीखी गई भाषा सामाजिक स्तर पर प्रयोग में न लाई जाए तब ऐसी भाषा को **सहायक भाषा** की संज्ञा देते हैं जैसे- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संस्कृत। कभी-कभी सीखी गई द्वितीय भाषा अत्यन्त सीमित और अस्थायी सन्दर्भों में व्यवहार में लाई जाती है। ऐसी स्थिति में उसे **संपूरक भाषा** कहते हैं। पर्यटन के उद्देश्य से सीखी गई द्वितीय भाषा इस वर्ग में आती है। किसी भाषिक समुदाय के सीमित किन्तु निश्चित सन्दर्भों में प्रयोग के उद्देश्य से सीखी गई द्वितीय भाषा **परिपूरक भाषा** कहलाती है। गैर हिन्दी राज्यों में हिन्दी का प्रयोग इसका उदाहरण हो सकता है। जब द्वितीय भाषा का प्रयोग सन्दर्भ विस्तृत होकर मातृ भाषा के समान हो जाए तब उसे **समतुल्य भाषा** कहा जाता है।

ध्यान रहे कि द्वितीय/अन्य भाषा विदेशी भी हो सकती है और स्वदेशी भी। एक हिन्दी वक्ता यदि फ्रेंच सीखता है तो फ्रेंच उसकी द्वितीय भाषा भी है और विदेशी भी, किन्तु यदि वही वक्ता बंगाली सीखता है तो बंगाली द्वितीय भाषा तो कही जाएगी किन्तु विदेशी नहीं। स्पष्ट है कि द्वितीय भाषा अधिगम/शिक्षण व्यक्ति को द्विभाषिक बनाता है किन्तु जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर व्यक्ति भाषा सीखता है उस आधार पर द्विभाषिकता की प्रकृति में अन्तर आ जाता है।

4.5 त्रुटि विश्लेषण error analysis

त्रुटि और शिक्षण का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध का साथ होता है फिर चाहे वह भाषा शिक्षण का क्षेत्र हो अथवा किसी अन्य क्रिया को सीखना। वक्ता कई बार अपनी मातृ भाषा के प्रयोग में भी गलतियाँ करता है और इन त्रुटियों की ओर उसका ध्यान भी नहीं जाता है। यह निश्चित है कि इन त्रुटियों के शुद्ध रूप की उसे जानकारी होती है तथा ध्यान जाने पर वह उन्हें स्वयं सुधार लेता है। इसके विपरीत नवीन भाषा सीखने वाला व्यक्ति त्रुटि करता है और पता चलने पर भी वह उसे दूर नहीं कर पाता है। ध्यान रहे कि भाषा सीखने वालों द्वारा की गई त्रुटियाँ मातृभाषाभाषी द्वारा की गई त्रुटियों से भिन्न होती हैं। किसी व्यक्ति द्वारा की गई त्रुटियों की प्रकृति और गुणात्मकता यह निर्धारित नहीं करता है कि उसका भाषा संबंधी ज्ञान कैसा है बल्कि इससे यह अवश्य ज्ञात हो

में बंधी होती है तथा सभी वक्ताओं में भाषा को संसाधित करने की क्षमता समान होती है। अतः कह सकते हैं कि सभी भाषाओं में कतिपय सामान्य अभिलक्षण प्राप्त होते हैं जिन्हें भाषा सार्वभौम कहा जाता है। इन भाषा सार्वभौमों की द्वितीय भाषा अधिगम में क्या भूमिका है? भाषा के व्याकरण से क्या तात्पर्य है? आदि प्रश्नों के समाधान द्वितीय भाषा अधिगम से सम्बन्धित शोधकार्यों में ढूँढ़े जा सकते हैं। ध्यान रहे कि भाषा अर्जन (language acqusition) तथा भाषा अधिगम (language learning) में अन्तर है। जीवन के विकासात्मक चरणों में बच्चे द्वारा भाषा क्षमता के क्रमिक विकास को प्राप्त करना, भाषा अर्जन कहलाता है जो अप्रत्यक्ष एवं प्राकृतिक होता है। 'अधिगम' से तात्पर्य मातृ भाषा में पूर्ण दक्षता प्राप्त करने के उपरान्त किसी भाषा के शब्द-भण्डार एवं व्याकरण को सीखना है। यह प्रत्यक्ष एवं सप्रयास किया जाता है तथा उपयुक्त परिस्थिति में स्वतः घटित नहीं होता है। सम्प्रति इस क्षेत्र में निम्न तीन प्रकार के शोध कार्य हो रहे हैं–

* भा$_1$ का भा$_2$ पर प्रभाव से सम्बन्धित अध्ययन;
* मानसिक निरूपण से सम्बन्धित अध्ययन;
* सार्वभौम सिद्धान्तों से सम्बन्धित अध्ययन।

प्रत्येक भाषा की संरचना दूसरी भाषा से भिन्न होती है। प्रायः देखा गया है कि भा$_1$ की संरचना (स्वनप्रक्रियात्मक, व्याकरणिक, वाक्यीय, आर्थी अभिलक्षण) द्वितीय भाषा अधिगम प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न करती है। संरचनावादी विद्वानों के विचारानुसार किसी भाषा को अर्जित करने का तात्पर्य एक प्रकार की भाषिक आदतों के समुच्चय को सीखना है और आरम्भ में सीखी हुई ये भाषिक आदतें, जब हम द्वितीय भाषा सीखने के लिए दूसरे समुच्चय को अधिग्रहीत करते हैं तब अधिग्रहण के मार्ग में बाधा पहुँचाती हैं। अतः भा$_1$ एवं भा$_2$ की संरचना का व्यतिरेकी अध्ययन महत्त्वपूर्ण होता है। प्रजनकशास्त्रियों के अनुसार भाषा अर्जन एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है जो जन्मजात, सहज एवं सार्वभौमिक होती है। अतः जिन वक्ताओं की अपनी मातृभाषा पर अच्छी पकड़ होती है उनका द्वितीय भाषा अधिगम भी अच्छा होता है। दूसरी भाषा सीखने का इच्छुक व्यक्ति उसके व्याकरण को ठीक उसी प्रकार सीखता है जिस प्रकार उसने अधिगम प्रक्रिया द्वारा अपनी मातृ भाषा सीखी थी। कतिपय विद्वानों का मानना है कि अधिगम प्रक्रिया एक होने पर भी इनमें कुछ अन्तर होता है। व्यक्ति जिस लक्ष्य भाषा या द्वितीय भाषा को सीखता है उसे पूर्ण रूप से नहीं सीख पाता क्योंकि जिन क्षेत्रों में

(ii) **अति सामान्यीकरण**–विद्वान अनेक त्रुटियों का कारण अति सामान्यीकरण, उपनियमों की अज्ञानता, भाषा शिक्षक की अज्ञानता अथवा अशुद्ध पाठ सामग्री को भी मानते हैं। हमारे देश के अनेक अंग्रेजी शिक्षकों का स्वयं का उच्चारण दोषपूर्ण होता है फलतः उनके छात्र भी दोषपूर्ण उच्चारण सीखते हैं।

(iii) **भाषा संरचना के आधार**–भाषा संरचना के आधार पर भी त्रुटियों का वर्गीकरण किया जा सकता है, यथा–स्वनप्रक्रियात्मक, व्याकरणिक, शैलीगत त्रुटियाँ इत्यादि। प्रत्येक भाषा की संरचना में कतिपय बिन्दु ऐसे होते हैं जिन्हें द्वितीय भाषा सीखने वाला कठिनाई से सीखता है। इनके शिक्षण के लिए उसे निरन्तर प्रयोग व अभ्यास की आवश्यकता होती है। विदेशी लोगों को हिन्दी की लिंग अन्विति, संयुक्त क्रियाएँ कठिन प्रतीत होती हैं।

कभी-कभी त्रुटियाँ भाषा के प्रयुक्तिपरक और शैली के सन्दर्भ को ठीक प्रकार से न समझने के कारण भी हो जाती हैं। स्पष्ट है कि भाषा शिक्षण को प्रभावी एवं उपादेय बनाने के लिए त्रुटियों का विश्लेषण करना अपेक्षित है तथा भाषा अधिगम के क्षेत्र में इसका बहुत महत्त्व है। 1970 के लगभग कतिपय विद्वानों ने व्यतिरेकी विश्लेषण एवं त्रुटि विश्लेषण दोनों की ही आलोचना कर इनकी उपादेयता पर प्रश्नचिह्न लगाया। यही नहीं इन विद्वानों ने व्याघात के सिद्धान्त को भी चुनौती दी और यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भाषा शिक्षण में व्याघात संबंधी त्रुटियों की संख्या बहुत कम होती है।

वर्तमान समय में संप्रेषणपरक भाषा शिक्षण प्रक्रिया के पक्षधर त्रुटियों को शिक्षण मार्ग की रुकावट न मान कर मार्ग के मील के पत्थर मानते हैं। इनके अनुसार यदि किसी त्रुटि का सम्प्रेषण की अभिव्यक्ति और धाराप्रवाहिता पर प्रभाव न पड़े तो उसे नजर अंदाज करना ही उचित होता है। इसका यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि ये विद्वान त्रुटियों पर ध्यान नहीं देते हैं अथवा उन्हें गंभीरता से नहीं लेते हैं। इस विषय में मॉरो (1981) के विचार उल्लेखनीय है, "उस अध्यापक को जो पूर्णतः संप्रेषण विधि की ओर झुकता है समझ लेना चाहिए कि व्याकरणिक एवं स्वनिक गलतियाँ सम्प्रेषण में बाधक हैं और गलतियों की अधिकता सम्प्रेषण को नष्ट भी कर सकती है।"

* * *

5.0 शैलीविज्ञान

5.1 शैली style

सम्प्रति, हिन्दी में, शैली शब्द का प्रयोग अँग्रेजी शब्द 'स्टाइल' के अनुवाद के रूप में किया जा रहा है। 'स्टाइल' शब्द लैटिन 'स्तिलुस' से बना है जिसका अर्थ है कलम (लिखने का साधन)। भारतीय चित्रकला में भी शैली शब्द का व्यवहार इस अर्थ में किया जाता है तथा राजपूत शैली, कांगड़ा शैली जैसे प्रयोग मिलते हैं। बोलचाल की भाषा में शैली का अर्थ है 'ढंग' या 'तरीका' और शैली शब्द का प्रयोग खान-पान की शैली, पहनने-ओढ़ने की शैली, लिखने-बोलने की शैली आदि अर्थों में किया जाता है। ऋषि पतंजलि के अनुसार लोक-प्रयोग द्वारा ही किसी शब्द का सही अर्थ ज्ञात किया जा सकता है और शैली शब्द के विविध प्रयोग उसके निम्नांकित अर्थ की ओर संकेत करते हैं- शैली शब्द एक ऐसा विचार है जिसका आरोपण समानता रखने वाली एकाधिक वस्तुओं एवं पदार्थों पर किया जा सकता है। सदृश होने के साथ-साथ ये पदार्थ बाह्य रूप में समान विशेषताओं की भी अभिव्यक्ति करते हैं। इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं में बाह्य लक्षणों के रूप में प्राप्त समानताओं का द्योतन 'शैली' शब्द द्वारा किया जाता है। सम्भव है कि बाह्य समानता लक्षित करने वाली इन वस्तुओं के मौलिक गुण भिन्न हों। अतः शैली सतही विशेषता है जो बाह्य आरोपित समानताओं की सूचक है। भाषा के क्षेत्र में शैली शब्द, दिन-प्रतिदिन के व्यवहार से भिन्न अर्थ में प्रयोग किया जाता है। भाषा का प्रमुख कार्य प्रेषणीयता है, यह एक अत्यन्त व्यापक उपादान है जो मानव को उसके समाज, जड़ चेतनमय जगत से बहुरूपेण जोड़ता है। इसकी व्याप्ति में वे समस्त वस्तुएँ, घटनाएँ एवं अनुभूतियाँ समाहित हैं जिनका मानव अथवा मानव समाज से सम्बन्ध है। भाषा इनका नामांकन कर न केवल उन्हें पहचान प्रदान करती है वरन् सामाजिक व्यक्तित्व प्रदान कर वाक् व्यवहार का

निर्देशन करती है। भाषा के क्षेत्र में शैली को प्रायः तीन अर्थों में ग्रहण किया जाता है–

(i) व्यक्तिगत वैशिष्ट्य

(ii) विषय प्रतिपादन की प्रविधि

(iii) साहित्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि

(i) व्यक्तिगत वैशिष्ट्य

शैली कृतिकार के व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य या सहज गुण है। फ्रेंच विद्वान ब्यूफाँ के मतानुसार `stule is the man' अर्थात् शैली मनुष्य के व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति या फलश्रुति है। इस विचार का समर्थन करते हुए प्रसिद्ध विद्वान गेटे ने कहा कि लेखक की शैली उसके मन की सच्ची प्रतिकृति होती है। इन्हीं विचारों की अभिव्यक्ति शौपेनहार ने निम्न पंक्ति में की है, 'शैली लेखक के अन्तःकरण की बाह्य कृति है।' लेखक अथवा कृतिकार केन्द्रित इन कथनों से ऐसा आभास होता है कि शैली के सन्दर्भ में माध्यम (भाषा) का कोई महत्त्व नहीं है।

(ii) विषय प्रतिपादन की प्रविधि

सामान्य भाषा में कह सकते हैं कि शैली किसी मंतव्य को व्यक्त करने की विशेष तकनीक या रीति है। स्विफ्ट के शब्दों में, 'उपयुक्त शब्दों का उपयुक्त स्थान पर प्रयोग' शैली है अर्थात् जब किसी अभीष्ट अर्थ को विशेष शब्दावली में खास अन्दाज में व्यक्त किया जाए। शैली प्रतिमान से एक प्रकार का अतिक्रमण है अतः उपयुक्त भाषिक इकाई का चयन एवं वाक्य विन्यास ही शैली है। जब वक्ता या लेखक भाषा की सामान्य व्यवस्थाओं को भंग कर उनमें परिवर्तन ला अर्थ की भंगिमाओं में समृद्धि लाता है तो उसे शैली कहते हैं। यहाँ कृतिकार के साथ-साथ माध्यम के महत्त्व को भी स्वीकारा गया क्योंकि लेखक निरंकुश नहीं है वरन् अपने आशय की अभिव्यक्ति के लिए वह भाषा पर निर्भर रहता है।

(iii) साहित्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि

शैली सम्बन्धी तीसरी मनोदृष्टि समीक्षकों के कथनों में मिलती है। जहाँ वे अपनी अभिरुचि एवं धारणा के आधार पर साहित्यिक कृति के सौन्दर्य या प्रभावोत्पादक तत्त्वों का मूल्यांकन करते हैं और अपने द्वारा स्थापित कसौटियों पर कृतिकार की शैली की आत्मनिष्ठ समीक्षा प्रस्तुत करते हैं।

इन दृष्टिकोणों के अतिरिक्त शैली विषयक एक अन्य दृष्टिकोण भी है जो यह मानकर चलता है कि किसी रचना को न तो कृतिकार के अभिप्राय के आधार पर जाँचा परखा जा सकता है और न पाठक या समीक्षक पर पड़े प्रभाव के सन्दर्भ में उसकी व्याख्या संभव है। उसकी सम्यक् व्याख्या कृति को ही आधार बनाकर हो सकती है जो अपने में स्वयं ठोस यथार्थ है जिसका एक पूरा संसार भाषा और शैली में आबद्ध रहता है। यह दृष्टिकोण शैली की पाठ केन्द्रित परिभाषा करता है। शैली भाषा का विशिष्ट प्रकार्य है। ऐसा प्रकार्य जो एक ओर भाषा की संरचना तथा दूसरी ओर अभिव्यक्ति के उद्देश्य और प्रसंग में विद्यमान सम्बन्ध को रेखांकित करता है। इस प्रकार 'शैली' भाषा तथा कृति (पाठ) के मध्य विद्यमान संबंध का नाम है। प्रसिद्ध भाषाविद् हैलिडे शैली को इसी अर्थ में ग्रहण करते हैं प्रत्येक भाषा अपने में एक सर्वमान्य नियम संहिता के रूप में होती है जो प्रत्येक भाषा भाषी को सुलभ होती है। कोई भी रचनाकार अपनी कृति के माध्यम से कुछ कहना चाहता है। इस दृष्टि से हर कृति का एक विषय होता है। एक प्रसंग और प्रयोजन होता है जिनकी परणिति का माध्यम भाषा है। शैली भाषा की इस अभिव्यक्ति की विशिष्टता को रेखांकित करती है। अस्तु शैली स्वतन्त्र सत्ता सम्पन्न तत्त्व नहीं अपितु भाषा तथा पाठ की संबंधक विशिष्टता है। शैली पाठ तथा भाषा का संयोजक सूत्र है। कोई भी साहित्यिक कृति भाषा को न केवल अभिव्यक्ति का माध्यम बनाती है अपितु स्वयं भाषा के भीतर ही जन्म लेती है। साहित्य वस्तुतः शाब्दिक कला है और कृति के रूप में साहित्यिक रचना भाषा की अपनी सीमा में बंधी एक स्वनिष्ठ/स्वायत्त इकाई है। शैली भाषा और कृति के अन्तःसम्बन्धों की द्योतक होती है और शैलीविज्ञान इन अन्तःसम्बन्धों की व्याख्या करता है। इस प्रकार शैली का वैज्ञानिक अध्ययन शैलीविज्ञान कहलाता है।

5.2 शैलीविज्ञान की परिभाषा

शैलीविज्ञान साहित्यिक आलोचना का सिद्धान्त भी है और प्रणाली भी। इसका चिन्तन वस्तुपरक होता है और दृष्टि भाषावादी। अनेक पाश्चात्य एवं प्राच्य विद्वानों ने इस अध्ययन विषय को परिभाषित किया–

डेविड क्रिस्टल के मतानुसार–"शैलीविज्ञान का मुख्य प्रयोजन है एक पाठ का व्यवस्थित और सांगोपांग विवरण प्रस्तुत करना।"

टर्नर के अनुसार, ``Stylistics is that part of linguistics which concentrates on variation in the use of lauguage, ofter but not

exclusively with special attention to the most conscious and complex uses of language in literature."

ग्राहमहाउ के अनुसार, ``The aim of stylistics is to establish a rigorous and concrete link between signifier and signitied and so reach a full and accurate understanding of the total literary existence of the work."

डॉ. विद्यानिवास मिश्र शैलीविज्ञान के लिए 'रीतिविज्ञान' शब्द के प्रयोग को अधिक उपयुक्त मानते हैं। उनके अनुसार–"रीतिविज्ञानपरक व्याख्या का उद्देश्य जीवन का निषेध या खण्डन या उपेक्षा नहीं है वरन् जीवन का भाषिक संकेतों में किस प्रकार एक ऐसा अमूर्तिकरण स्थापित किया जा सकता है जिस बिन्दु पर कवि और सहृदय पाठक दोनों मिल सकते हैं, यह दिखलाना है। भाषा के भीतर रहते हुए भाषा के झरोखे से यथार्थ को पहचानने की कोशिश यही रीतिविज्ञान का चरम लक्ष्य है।"

प्राचीन भारतीय साहित्य पर दृष्टिपात करने पर हम देखते हैं कि सभी सम्प्रदायों ने 'रीति' का ही प्रयोग किया है। वामन के अनुसार, "रीतिरात्मा काव्यस्य" अर्थात् क।व्य की आत्म रीति है और रीति का अर्थ है 'विशिष्ट पदरचना'। पदरचना की विशिष्टता उस गुण की जनक है जो काव्य का लक्षण है। इस प्रकार रीति वस्तुतः पाठकेन्द्रित मनोदृष्टि है जो भाषायी तत्त्वों के आधार पर कृति की काव्यात्मकता की व्याख्या करने का प्रयत्न करती है।

5.3 शैलीविज्ञान का क्षेत्र

शैलीविज्ञान साहित्य को समझने परखने की एक दृष्टि है जो भाषावैज्ञानिक आधारों पर किसी साहित्यिक कृति का परीक्षण कर उसकी भाषागत साहित्यिकता का उद्घाटन करता है। इस हेतु वह एक ओर कृति की संरचना और गठन पर प्रकाश डालता है और दूसरी ओर कृति का भाषिक आधारों पर विश्लेषण कर उसमें अन्तर्निहित साहित्यिकता का उद्घाटन करता है। भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग व्यंजक अभिव्यक्ति के रूप में वह 'शैली' को कलात्मक सौन्दर्य और भाषिक संरचना का सेतु स्वीकार करता है।

समस्त भाषिक व्यवहार का साहित्य के अन्तर्गत परिगणन नहीं किया जा सकता है। समाचार पत्र, सूची पत्र, गणित के सूत्र ये सभी साहित्य के क्षेत्र में नहीं आते हैं।

जिस भाषा व्यापार में स्थायित्व हो, जिसका बार-बार पठन-पाठन हो उसे वाङ्मय कहा जाता है, जैसे- ऐतिहासिक-ग्रंथ, वैज्ञानिक-ग्रंथ आदि। जिन रचनाओं में सौन्दर्य तत्त्व की प्रधानता हो वह साहित्य कहलाता है। इस प्रकार साहित्य कलात्मक सर्जन है। साहित्य के दो पक्ष हैं-भाषा और कला। इस दृष्टि से 'साहित्य शाब्दिक कला है।' किन्तु कलात्मक संवेग का प्रत्येक प्रतिफल साहित्य नहीं कहा जा सकता और भाषा का हर व्यक्त रूप साहित्य नहीं होता है। जिस प्रकार कला के अध्ययन का क्षेत्र कलाशास्त्र होता है और भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन भाषाविज्ञान का विषय है उसी प्रकार शाब्दिक कला के रूप में परिभाषित साहित्य के अध्ययन विश्लेषण का क्षेत्र शैलीविज्ञान है। स्पष्ट है कि शैलीविज्ञान का क्षेत्र कला और भाषा की संपृक्ति का क्षेत्र है। इसका एक छोर कला सिद्धान्त और सौन्दर्य चेतना से नियन्त्रित है तो दूसरा छोर भाषा सिद्धान्त और भाषा बोध से। यह भाषाविज्ञान का एक उपांग है या इसका क्षेत्र सामान्य भाषाविज्ञान से अधिक व्यापक है इस बिन्दु पर विद्वानों में मतभेद है। कह सकते हैं कि शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान का वह अनुप्रयोग है जिसमें सैद्धान्तिक प्रतिमानों के साथ-साथ विश्लेषण की प्रविधि भी उपलब्ध है जो भाषा के सौन्दर्यपरक और सर्जनात्मक प्रयोगों का अध्ययन और विवेचन करता है।

5.4 सामान्य, मानक एवं साहित्यिक भाषा का अन्तःसम्बन्ध

शैलीविज्ञान के अन्तर्गत भाषा में प्राप्त विशेषकर साहित्य भाषा में प्राप्त उन विशिष्टताओं का विश्लेषण किया जाता है जो साहित्य भाषा को विशिष्टता प्रदान करती हैं। यह भाषा रूप सामान्य भाषा से ही उद्भूत होता है। सामान्य भाषा सर्वजन सुलभ रहती है। उसकी व्याप्ति और प्रसार भाषाभाषी समुदाय के परिवेश में आने वाले समस्त अनुभवों और जीवन के सभी पक्षों तक रहता है। प्रसंग, सन्दर्भ, परिस्थिति, प्रयोक्ता, परिवेश आदि दृष्टियों से सामान्य भाषा में विविधता प्राप्त होती है। दैनिक व्यवहार की यह भाषा स्वतः स्फूर्त होती है जो समय के साथ विकसित, परिवर्तित होती है। यदि किसी भाषाभाषी समुदाय में शिक्षा, समाचार पत्र तथा संचार साधनों का पर्याप्त विकास है तो सामान्य भाषा की प्रवृत्ति मानकीकरण की रहती है और फलस्वरूप सामान्य भाषा से ही परिनिष्ठितमानक भाषा रूप जन्म लेता है। मानक भाषा में स्थिरता होती है, विकल्प एवं अपवाद कम से कम होते हैं। साथ ही स्वीकृत रूपों की संख्या मर्यादित होती है किन्तु यह स्थिरता लचीली होती है जो भाषिक समुदाय की सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत घटित परिवर्तनों से अपना तालमेल बैठा लेती है। मानक भाषा का एक अन्य गुण उसमें प्राप्त विशुद्धता है जो प्रसंगानुसार परिवर्तित होती है। बोलचाल में यह

परिशुद्धता निम्नतर स्तर पर तथा शास्त्र भाषा में उच्चतम बिन्दु पर होती है। मानक भाषा के चार प्रयोजन हो सकते हैं–

- एकता
- विभेद
- प्रतिष्ठा
- प्रतिमान

यह भाषाभाषी समुदाय में एकता की भावना का संचार करती है। इसके माध्यम से बोलियों में एकीकरण होता है। इस भाषा रूप के प्रयोग से वक्ता को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। साथ ही यह उसके शिक्षित, सुसंस्कृत, प्रगतिशील होने का परिचायक होती है। यही नहीं दो भाषा रूपों के मध्य का अन्तर मानक रूप द्वारा स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इस भाषा रूप को आदर्श माना जाता है जिससे च्युत प्रयोग अव्याकरणिक, अशुद्ध कहे जाते हैं। मानक भाषा यद्यपि सामान्य भाषा से ही विकसित होती है तथापि उससे कहीं अधिक व्यवस्थित होती है और इस भाषा रूप से ही साहित्यिक भाषा जन्म लेती है।

सामान्य भाषा और साहित्यिक/काव्य भाषा के संबंध में कह सकते हैं कि जहाँ प्रथम का उद्देश्य मात्र सम्प्रेषण है वहाँ साहित्यिक भाषा के शब्द नवीन अर्थों का द्योतन करते हैं। सामान्य भाषा में जो शब्द किसी वस्तु या पदार्थ को इंगित करते हैं वहीं साहित्यिक भाषा में वही शब्द उस वस्तु या पदार्थ के साथ-साथ अन्य अर्थों को भी प्रकट करते हैं। परिणामतः भाषा एक नवीन कार्य की ओर उन्मुख होती है। यही नहीं सामान्य भाषा सहज और सुगम होती है, जबकि साहित्यिक भाषा प्रयत्न प्रसूत होती है। कह सकते हैं कि सर्वजन सुलभ भाषा में वैशिष्ट्य प्रदान कर, उसे विकसित कर, काव्य भाषा का निर्माण होता है। सामान्य भाषा की यह सहजता उसकी बहिर्मुखी प्रकृति की परिचायक है। वह चतुर्दिक व्याप्त रूपमय जगत का नामांकन करती है। सन्दर्भ से जुड़े होने के कारण सामान्य भाषा संकेतपरक होती है तथा अर्थबोध ही उसका चरम लक्ष्य होता है। इसके विपरीत साहित्यिक भाषा अन्तर्मुखी होती है। यह रचनाकार की अनुभूति, संवेदना से संपुष्ट होकर संदेश का वहन करती है। फलतः बहुधा यह बाह्य जगत सापेक्ष न होकर संदेश सापेक्ष होती है। इस प्रकार नाम और रूप, संकेत और संकेतित अथवा शब्द और अर्थ के मध्य जो स्थिर सम्बन्ध सामान्य भाषा में प्राप्त होता है, वह काव्य भाषा में टूट जाता है।

बहुधा कहते हैं कि सामान्य भाषा एक पारदर्शी शीशे के समान है जिसके माध्यम से वक्ता जड़ चेतनमय जगत का अनुभव तथा निरीक्षण करता है और काव्य/साहित्यिक भाषा एक ऐसे दर्पण की भाँति है जिसमें कवि द्वारा अनुभूत वस्तुएँ उसकी संवेदना से अतिरंजित होकर प्रतिबिम्बित होती हैं। कवि की भाषा वास्तविकता से परे, हमारी पकड़ से बाहर होती है फलतः उसकी संरचना जटिल होती है। कवि भाषायी संरचना में प्राप्त तत्त्वों का कुशल प्रयोग करता है। उसे अपनी प्रतिभा से मण्डित कर उसमें चमत्कार की सृष्टि करता है। स्पष्ट है कि सामान्य भाषा के गर्भ से जन्मी साहित्यिक/काव्य भाषा उसकी तुलना में कृत्रिम, जटिल, आकर्षक एवं सर्जनात्मक होती है जो रचनाकार की अनुभूति को उसकी अधिकाधिक निजता के साथ सम्प्रेषित करने में समर्थ होती है।

5.5 शैली के साधन/उपकरण

5.5.1 चयन choice

'चयन' से तात्पर्य भाषा में उपस्थित विकल्पों में से उपयुक्त विकल्प का चुनाव करना है। एक ही विचार को प्रेषित करने के लिए समान सूचना देने के लिए हर भाषा में एकाधिक विकल्प होते हैं। रचनाकार भाषा की इस सम्पदा से अपनी अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त विकल्प का चयन करता है। विषय, प्रकरण, प्रयुक्ति (रजिस्टर), सन्दर्भ, सांस्कृतिक परिवेश आदि इन विकल्पों को नियन्त्रित करते हैं। इन्हीं नियन्त्रणों को ध्यान में रखते हुए भाषा के अन्तर्गत किस प्रकार चयन मूलक प्रवृत्ति कार्यरत हुई है इसका वर्णन एवं विश्लेषण शैलीविज्ञान का अध्येता करता है। काव्य भाषा की प्रभावात्मकता अधिकाधिक सीमा तक चयन पर निर्भर करती है। स्पष्ट है कि अनेक सम्भावनाओं में से एक सम्भावना/विकल्प का चुनाव चयन कहलाता है।

लीचं के मतानुसार, ``A respected literary style is one, in which each of vocabulary or grammar is arrived at by exercise of the writer's juedgement and sensibility.

अर्थात् रचनाकार की सफलता का रहस्य अन्य गुणों के साथ-साथ इस तथ्य में भी निहित है कि वह अनेक पर्यायवाची शब्दों में से एक ऐसे शब्द का, अथवा अनेक व्याकरणिक रूपों में से एक ऐसे रूप का चयन करे जो उसके कथ्य को प्रभावशाली, हृदयहारी, सशक्त एवं यथेष्ट रूप में अभिव्यक्त करने में सफल सिद्ध हो। इस चयन

का मूल आधार होता है रचयिता का विवेक और उसकी विषयानुसारणी भाव-प्रवणता। ध्यान रहे कि चयन यादृच्छिक नहीं होता है अपितु रचना की संघटना के विभिन्न घटकों के सहसम्बन्ध से नियन्त्रित रहता है। चयन भाषा संरचना के प्रत्येक स्तर पर प्राप्त होता है- ध्वनि शब्द, रूप चयन आदि इसके विविध प्रकार मिलते हैं। चयन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शब्द-चयन है क्योंकि व्यावहारिक धरातल पर अर्थ की दृष्टि से शब्द ही भाषा की लघुतम इकाई है, उदाहरणार्थ–प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ की कविता 'डेफोडिल्स' की निम्न पंक्तियाँ देखें–

'Ten thousand saw I at a glance,
Tossing their heads in sprightly dance.'

यहाँ `sprightly' के स्थान पर gay, full of joy, vivacious आदि शब्दों का प्रयोग किया जा सकता था, पर नृत्य के प्रसंग में इस पद में जो सजीवता है वह अन्य शब्दों में नहीं है। श्री मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा रचित एक अन्य उदाहरण देखें–

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।'

यहाँ पर रचनाकार स्त्री, नारी, औरत आदि शब्दों का प्रयोग कर सकता था, किन्तु अबला शब्द में जो विवशता छिपी है जो दुर्दशा एवं ताड़ना का जो अभिशाप तुल्य भाव परोक्ष रूप से प्रतीत हो रहा है उसकी अभिव्यक्ति अन्य किसी शब्द द्वारा नहीं हो सकती अतः युगान्तर से शोषित एवं प्रताड़ित स्त्री की असहाय स्थिति की व्याख्या हेतु 'अबला' शब्द से सटीक प्रयोग नहीं हो सकता है।

भाषा में कतिपय ध्वनियों का प्रभाव कठोरता का रहता है और कुछ का कोमलता का। इसी आधार पर काव्य भाषा में स्वन्यात्मक सौन्दर्य आता है। कवि विशिष्ट ध्वनि से रचित विशिष्ट शब्द का प्रयोग प्रायः ओज, लालित्य, भीषणता, दुर्बलता प्रकट करने के लिए करते हैं, दृष्टव्य हैं निराला जी की निम्न पंक्तियाँ–

झूम-झूम मृदु गरजि गरजि घनघोर,
राम भ्रमर अम्बर में भर निज टोर।।
झर-झर-झर निर्झर गिर सर में,

घर मरू तरू मर्म सागर में।।

सरित तडित गति चकित पवन में।

इन पंक्तियों के पाठन मात्र से बादलों की गर्जना व मूसलाधार वर्षा, बिजली की चपलगति, हवा का झोंका सब कुछ मूर्तिमान हो जाता है। यहाँ ध्वनि चयन के सटीक प्रयोग द्वारा ही यह सम्भव हुआ है। इसी प्रकार का चित्र जय शंकर प्रसाद जी ने अपनी रचना 'आँसू' में प्रस्तुत किया है–

"झमंग झकोर गर्जन था, बिजली थी नीरद माला,

पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला।।"

एक अन्य उदाहरण देखें–

'देवद्रोह ऊँचे शिखर का

व्योम चुम्बन ग्रस्त'

'कामायनी' की इस पंक्ति में 'व्योम' के अनेक पर्यायों में से इसी शब्द का चयन किया गया है क्योंकि 'ओ' ध्वनि ऊँचाई का प्रभाव सृजित करती है। पंत जी का एक उदाहरण देखें–

"व्योम से उतर रही चुपचाप"

यहाँ आकाश की ऊँचाई से उतरती सन्ध्या का चित्र अंकित करने के लिए 'व्योम' शब्द का चयन किया गया है जो अनन्त ऊँचाई तक फैले आकाश का ध्वनि द्वारा द्योतन करता है। इसी प्रकार तुलसीदास जी कहते हैं 'कनक भूधराकार सरीरा'। विशालता का बोध 'पर्वत' भी कराता है किन्तु कवि ने उसकी भी अतिशयता दिखाने के उद्देश्य से 'भूधर' का प्रयोग किया। स्पष्ट है कि चयन काव्य भाषा का एक मुख्य गुण है जिसके माध्यम से रचनाकार अपने कथ्य में प्रभावात्मकता और अर्थ गाम्भीर्य का सर्जन करता है।

5.5.2 विचलन deviation

प्रत्येक भाषा एक संहिता होती है जिसके समस्त तत्त्व एवं इकाइयाँ परस्पर निश्चित सम्बन्धों में आबद्ध रहते हैं। भाषा का व्याकरण इन्हीं निश्चित सम्बन्धों की व्याख्या करता है और सामान्य भाषा इन्हीं नियमों में बंधी रहती है किन्तु काव्य भाषा

रचनाकार की विशिष्ट अभिव्यक्ति होने के कारण भाषा के इन नियमों, बंधनों का उल्लंघन करती है। अनुभव का दबाव रचनाकार को अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करता है और सामान्य भाषा इस अभिव्यक्ति में समर्थ नहीं होती है फलतः कवि/लेखक भाषा के नियमों की सीमा का अतिक्रमण कर अपनी बात कहने का प्रयत्न करता है। भाषा के नियमों का उल्लंघन करना ही 'विचलन' कहलाता है। भाषाविद् लीच के मतानुसार कोई भी वक्ता भाषा में प्राप्त सृजनशीलता का प्रयोग दो प्रकार से करता है—प्रथमतः वह भाषा की स्थापित मान्यताओं का मौलिक प्रयोग करता है अथवा द्वितीयतः स्थापित मान्यताओं का अतिक्रमण करता है जिसके परिणामस्वरूप ऐसी नवीन सम्भावनाओं का सृजन होता है, जो पहले से भाषा के कलेवर में स्थित नहीं होती है। काव्यभाषा की यह सृजनशीलता ही विचलन को जन्म देती है। शैलीविज्ञान के क्षेत्र में भाषा के सामान्य रूप से हटकर किया गया भाषा का प्रयोग विचलन के अन्तर्गत माना जाता है। लीच के शब्दों में,

``...linguistic usage considered to depart from normal expectations of users of the language."

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा 'कुटुज अदना-सा बिरछ है' पंक्ति में वृक्ष का अदनापन 'बिरछ' के प्रयोग द्वारा लक्षित किया गया है। स्पष्ट है कि भाषा के नियमों का अतिक्रमण विचलन कहलाता है। काव्य भाषा में प्राप्त यह विचलन सोद्देश्य होता है, साथ ही उसका प्रयोजन भाषा की आन्तरिक संरचना से जुड़ाव रखता है। तात्पर्य यह है कि पाठक को मात्र आश्चर्यचकित करने के उद्देश्य से किया गया विचलन रचनाकार की असमर्थता का सूचक है किन्तु जब पाठक का ध्यान आकर्षित हो किसी अन्य बिन्दु पर टिक जाए तो यही विचलन का सफल मूलभूत उद्देश्य माना जाता है।

विलचन भाषा के सभी स्तरों, व्याकरणिक नियमों, शब्दों के सहप्रयोग में और वाक्य विन्यास में परिलक्षित होता है। वाक्य विन्यास के स्तर पर पदक्रम विचलन का एक उदाहरण देखें—

'अबे सुन बे गुलाब'

यहाँ प्रभाव सर्जन के लिए पदक्रम विचलित किया गया है। इसी प्रकार निम्न पंक्तियाँ देखें—

बहती है एक शाम,
अतर्कित, किसी प्रेम साहस की तरह
और दिन
गिन रहा है जैसे कड़ियाँ
पड़ा हुआ पहाड़ की चोटी पर।

विचलन के माध्यम से कवि विषय वस्तु को मूर्त गोचर रूप प्रदान करने का प्रयत्न करता है। जैसे समुद्र के किनारे रहने वाले लोग समुद्र के गर्जन उसकी सुरमता के अभ्यस्त हो जाते हैं और उसका नाद सौन्दर्य उनके लिए मायने नहीं रखता उसी प्रकार जिन शब्दों, उक्तियों का हम बार-बार प्रयोग करते हैं वे हमारे लिए जड़ हो जाती हैं उनकी जीवन्तता समाप्त हो जाती है वे हमारे लिए मात्र संकेतक रह जाती हैं। काव्य भाषा के स्तर पर विचलन हमारी जड़ीभूत संवेदनाओं के धरातल को तोड़कर अनुभूतियों के गतिशील संसार का निर्माण करता है। शब्द सहप्रयोग विचलन का एक उदाहरण देखें–

"और यह समय है
जब रक्त की शिरा
शरीर से कटकर अलग हो जाती है
और यह समय है
जब मेरे जूते के अन्दर की नन्ही सी कील
तारों को गड़ने लगती है।"

5.5.3 समानान्तरता Parallelism

समानान्तरता का आशय है बाह्य अथवा आन्तरिक आवृत्ति। जब किसी रचना में समान या विरोधी भाषिक इकाइयों की एक या अधिक बार आवृत्ति हो तो इस विशेषता को पाश्चात्य शैलीविदों ने समानान्तरता की संज्ञा दी। लीच के विचारानुसार,

``A type of foregrounding which is in a sense the opposite of deviation, for it consits in the introduction of extra regularities not

irregularities into the language. This is parallelism in the widest sense of the word."

स्पष्ट है कि जहाँ कथन के किसी अंश को महत्त्वपूर्ण बनाने के उद्देश्य से व्याकरण के नियमों का पालन कुछ अतिशयता के साथ किया जाए और फलतः उनकी बारम्बार आवृत्ति हो। भाषा की सामान्य नियमितता की तुलना में अतिरिक्त नियमितता का पालन समानान्तरता की युक्ति के रूप में समझा जाता है। रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में "अगर विचलन का सिद्धान्त अनियमितता की संकल्पना को आधार बनाता है तब समानान्तरता अतिरिक्त नियमितता की संकल्पना को। समानान्तरता का अर्थ है किसी भाषिक लक्षण या विधान की पुनरावृत्ति की नियमितता।" समानान्तरता भाषायी संरचना के प्रत्येक स्तर पर घटित होती है। शब्दीय समानान्तरता का एक उदाहरण देखें–

"मर गई कविता ? जवानी मर गई,
मर गया सूरज सितारे मर गए।
मर गए सौन्दर्य सारे मर गए,
सृष्टि के आरम्भ से चलती हुई।
प्यार की हर साँस पर पलती हुई,
आदमीयत की कहानी मर गई।"

यह पंक्तियाँ मानवीकरण के आधार पर सहप्रयोग विचलन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

रूपीय एवं शब्दीय समानान्तरता का एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है–

"कोई पैदा हुआ तो इसको लुटाया,
कोई मर गया तो इसको चढ़ाया।
घरों की दीवारों को इससे सजाया,
कभी जुल्फों की इसे शोभा बनाया।"

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रयुक्त भाषा के समान और व्यतिरेकी तत्त्वों की समतल स्थिति, कलात्मकता को प्रतिफलित करती है।

5.5.4 अस्पष्टता ambiguity

कभी-कभी साहित्यिक भाषा शब्द के स्तर पर व्याकरणिक नियमों के अनुकूल होती है पर अर्थ के स्तर पर बोधगम्य प्रतीत नहीं होती है। सामान्यतः इस प्रकार की अस्पष्टता/संदिग्धता को दोष माना जाता है किन्तु जब यह विशेषता काव्य भाषा में चमत्कार उत्पन्न करे तो इसे वैशिष्ठ्य के रूप में स्वीकारा जाता है। रेयमंड के मतानुसार,

``ambiguity is doubtfull meaning of sentences sharing the same surface structure but with different deep structure.

अस्पष्टता में एक बाह्य संरचना की एकाधिक वैकल्पिक आन्तरिक संरचनाएँ सम्भव होती हैं किन्तु पाठक प्रसंग अनुसार उनमें से एक ही को स्वीकारता है, यथा-

"राघव विरह ज्वाला सन्तापित सह्यशैल शिखरेषु।
शिशिरे सुखं शयानाः कपयः कुप्यन्ति पवनतनयाय।।"

अर्थात् सीता से बिछुड़ जाने के बाद राम के हृदय में उठने वाली विरह की ज्वाला से सह्य पर्वत की चोटियाँ तप गई हैं। शीत ऋतु में इन चोटियों पर चैन से सोने वाले वानर हनुमान पर कुपित हो रहे हैं। प्रथम दृष्टया इन पंक्तियों को पढ़ कर पाठक के मन में यह भाव उठता है कि वानर अपने ही साथी पर क्रोधित क्यों हो रहे हैं? विचारोपरान्त स्पष्ट होता है कि हनुमान ही राम के हृदय में विरहाग्नि उत्पन्न करने का कारण थे। इस प्रकार के प्रयोग भी अस्पष्टता के उदाहरण माने जा सकते हैं। मुक्ति बोध का एक उदाहरण देखें–

विचित्र अनुभव!!
जितना मैं लोगों की पांतों को पाट कर
बढ़ता हूँ आगे,
उतना ही पीछे मैं रहता हूँ अकेला,
पश्चात पद हूँ।

उपर्युक्त पंक्तियाँ आर्थी संदिग्धता एवं अनेकार्थता के रूप में कथ्य की विशिष्ट अभिव्यंजना प्रस्तुत करती हैं।

5.5.5 प्रयुक्ति का उल्लंघन violation of register

संदर्भ, प्रसंग, वक्ता और विषय के अनुरूप प्राप्त भाषा के भिन्न-भिन्न रूप प्रयुक्ति कहलाते हैं। रेयमंड के अनुसार,

``Register (is a): linguistic performance showing distinctive features chosen with regard to external circumstances."

सामान्यतः रचनाकार रचना की परिस्थिति या प्रसंग के अनुकूल प्रयुक्ति का प्रयोग करता है किन्तु कभी-कभी इसका उल्लंघन मिलता है जो चमत्कारपूर्ण होता है, जैसे– पन्त जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ–

"सर्प रज्जु भ्रम में फँसकर हा,
(माया मिली न राम।)
शून्य में लटका घूँघा
ब्रह्मवाद का
ज्योति-अन्ध मन" –पन्त

यहाँ प्रयुक्त 'सर्प रज्जु भ्रम' वेदान्त दर्शन की प्रयुक्ति से लिया गया है।

इसी प्रकार नागार्जुन की कविता की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"वस्तु है भूसी,
रूप है चमत्कार।
ध्वनि और व्यंग पर,
मरता है संसार।
वाच्य या आशय पर कौन देता है ध्यान
तर्ज़ और तरन्नुम है शायरी की जान।

इन पंक्तियों में आगत ध्वनि, वाच्य, व्यंग आदि शब्द काव्यशास्त्र की प्रयुक्ति से लिए गए हैं।

5.5.6 अप्रस्तुत विधान trope

जब रचनाकार प्रस्तुत के आधार पर अप्रस्तुत का वर्णन करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रयास में स्थूल से सूक्ष्म का सम्बन्ध, सूक्ष्म से स्थूल का सम्बन्ध, अचेतन का मानवीकरण आदि विशेषताएँ काव्य भाषा में लक्षित होती हैं, यथा–

झमंग झकोर गर्ज था बिजली थी नीरद माला,
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला।।

प्रथम पंक्ति में वर्णित वर्षा ऋतु का वर्णन, बादलों की गरज, बिजली की चमक आदि अप्रस्तुत हैं। कवि ने उनके आधार पर विरहणी के हृदय में उठते हाहाकार का वर्णन किया है। मानवीकरण का एक अन्य उदाहरण देखें–

"उदयाचल की किरन धेनुएँ
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला"

'सूर्य' को 'प्रभात का ग्वाला' कहते हुए उषा का चित्रण किया गया है। पिछले उदाहरणों में प्रयुक्त 'तारों को गड़ने लगती है' अथवा 'मर गई कविता' जैसे प्रयोग भी मानवीकरण के संकेतक हैं।

5.5.7 बिम्ब व्रिधान imagery

किसी मूर्त या अमूर्त की मानसिक छवि 'बिम्ब' कहलाती है। यह अभिव्यक्ति में चित्रात्मकता के सर्जन के साथ-साथ उसकी प्रभावशीलता में वृद्धि करता है। सामान्यतः बिम्ब का प्रयोग विभिन्न दृष्टियों से किया जाता है।

(i) परिवेश का चित्रण करने के लिए, यथा–कवि पूरन चन्द्र जोशी की निम्न पंक्तियाँ देखें–

तोड़ता पत्थर
तोड़ता बड़े-बड़े शिलाखंड
सड़क ही में काम
सड़क ही में डेरा डफेरा

सड़क ही के किनारे
तीन मिट्टी पत्थर के ही
छोटे-छोटे घरौंदे
यही है मजूरों की बस्ती
यही है मजूर की पाठशाला…।

(ii) बिम्ब विधान का दूसरा प्रयोग व्यंग्य गर्भिता के लिए किया जाता है, यथा–

"नीम के पत्तों की झड़ी सी लगी है वे लगातार ऐसे झर रहे हैं मानों पेड़ ऊबकर जी कड़ा करके बदन हिलाकर उन्हें झाड़ दे रहा हो।"

(iii) बिम्ब का तीसरा प्रयोग सूक्ष्मोन्मुख होता है अर्थात् स्थूल के माध्यम से सूक्ष्म अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, उदाहरणार्थ-

"मुझ में दिल था
लोग कहते थे तुम अभी बच्चे हो
मैंने दिल मजबूत किया
लोग कहने लगे तुम बिल्कुल कच्चे हो
मैंने दिल की जगह एक जूता टाँग दिया
लोग चिल्ला उठे अरे तुम कितने सच्चे हो।।"

इस प्रकार शैलीविज्ञान भाषा के आधार पर की गई साहित्य की सौन्दर्यमूलक व्याख्या है। यह किसी रचना का भाषा के प्रत्येक स्तर-ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि तथा चयन, विचलन, समानान्तरता इत्यादि शैली के विभिन्न आधारों पर विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

***

6.0 संगणक भाषाविज्ञान

मानव सभ्यता के विकास के साथ मानव प्रकृति-निर्भर से उत्पादक और उपभोक्ता बन गया। उसका संपर्क क्षेत्र सूचनाओं के आदान-प्रदान की क्षमता एवं उस दिशा में कार्यशील साधनों की खोज की ओर अग्रसरित हुआ। फलस्वरूप अभिव्यक्ति के प्रत्येक साधन को जाँच परख उसे विकसित करने के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहा। इस दिशा में कम्प्यूटर उसका नवीनतम आविष्कार है जो 1940 के उत्तरार्द्ध से जनसामान्य में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है। आज अपनी अपार क्षमता से इस मानवीय आविष्कार ने ज्ञान के विविध क्षेत्रों में सूचनाओं का विस्फोट सा कर दिया है।

6.1 संगणक/कम्प्यूटर

संगणक है क्या और इसका कार्य क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में कह सकते हैं कि एक ऐसा यन्त्र जो प्रतीकों को संसाधित (प्रोसेस) करता है, कम्प्यूटर कहलाता है। एक निश्चित प्रतीक शृंखला का आगम (इनपुट); प्राकलन (प्रोग्राम) द्वारा संसाधन कर अभीष्ट का निर्गम (आउटपुट) ही इसके आधारिक कार्य हैं। यह एक ऐसी मशीन है जिसे यदि प्रतीकों की शृंखला प्रदान की जाए तो वह उसे निश्चित नियम समुच्चय द्वारा संसाधित करती है और निष्कर्ष के रूप में सामने एक अन्य प्रतीक शृंखला आ जाती है। इस मशीन के पास मस्तिष्क भी है और स्मृति भी। मानव और कम्प्यूटर में इतनी भिन्नता है कि मानव इन दोनों (मस्तिष्क एवं स्मृति) का प्रयोग स्वेच्छा से करता है जबकि कम्प्यूटर से यह कार्य मानव करवाता है। आदेश प्राप्त होने पर यह मशीन कार्य करती है। आवश्यकतानुसार कौन सा प्रोग्राम उसके मस्तिष्क में फीड करना है इसका निर्धारण भी मानव ही करता है। इस प्रकार कम्प्यूटर एक ऐसी मशीन है जो मानव द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों, शब्दों, चित्रों, वार्तालाप आदि को अपनी स्मृति में धारण कर उनका संसाधन करती हैं तथा आवश्यकतानुसार उस सामग्री को परिवर्तित कर पुनः उपलब्ध करा सकती है। कतिपय कम्प्यूटर अंकों के आधार पर गणना करते हैं

इन्हें डिजिटल कम्प्यूटर कहा जाता है। इनकी गणना शत प्रतिशत शुद्ध होती है जबकि कुछ यन्त्र अन्दाज से माप के आधार पर गणना करते हैं। ऐसे यन्त्रों को एनालॉग कम्प्यूटर नाम दिया जाता है। जिन मशीनों में दोनों प्रकार के परिकलन की व्यवस्था होती है उन्हें हाइब्रिड की संज्ञा दी जाती है। इन तीनों में सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय डिजिटल कम्प्यूटर हैं।

6.2 संगणक के प्रमुख अवयव

किसी भी संगणक के दो मुख्य अवयव होते हैं- पहला उसका अभियांत्रिक पक्ष अर्थात् हार्डवेयर जिसमें मॉनिटर, संसाधक, की-बोर्ड, माउस आदि की गणना की जाती है; दूसरा अवयव 'साफ्टवेयर' कहलाता है जिसमें किसी भी कार्य को निष्पन्न करने के लिए क्रमबद्ध निर्देश दिए होते हैं। इसे प्रोग्राम की संज्ञा दी जाती है। जहाँ प्रथम को कम्प्यूटर का शरीर पक्ष कहा जाता है वहाँ द्वितीय उसका बुद्धि पक्ष कहलाता है। प्रोग्राम निर्माण संगणक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है यदि इसमें किसी प्रकार की कमी रह जाए तो जिस कार्य की पूर्ति के लिए प्रोग्राम बनाया गया है वह सिद्ध नहीं होता है। ध्यान रहे प्रोग्राम लेखन सामान्य भाषा में नहीं किया जाता है। संगणक के समस्त व्यापार द्विचर अंकों (0 तथा 1) पर आश्रित होते हैं। इनके संयोग से संगणक की कार्य प्रणाली निर्धारित होती है अतः सर्वप्रथम सामान्य भाषा को द्विचर अंकों में परिवर्तित किया जाता है। संगणक निष्कर्षों को पुनः सामान्य भाषा में रूपान्तरित कर प्रस्तुत करता है। आधुनिक पर्सनल संगणक में तीन अवयव मिलते हैं–

(i)	सेन्ट्रल प्रोसेसिंग यूनिट	central processaing unit (सी.पी.यू.)
(ii)	की बोर्ड	key board
(iii)	मॉनिटर	monitor

प्रत्येक कम्प्यूटर में एक मदर बोर्ड होता है जिसमें संसाधक रहता है और जिसके माध्यम से अंकीय गणनाओं की साथ-साथ तार्किक गणनाएं की जाती हैं। सी.पी.यू. में ही स्मृति कोश स्थित होता है। कम्प्यूटर में दो प्रकार की स्मृति मिलती है- पठन मात्र स्मृति (ROM) अर्थात् जिसे सिर्फ पढ़ना सम्भव हो; यादृच्छिक अभिगम स्मृति (RAM)-पढ़ने के साथ-साथ इसका संशोधन भी किया जा सकता है। इसे आवश्यकतानुसार हटाया भी जा सकता है। इनके अतिरिक्त सहायक स्मृति कोश के रूप में सीडी, फ्लॉपी, पेन ड्राइव का प्रयोग किया जा सकता है। एक कम्प्यूटर में संचित डाटा या

निष्कर्षों को किसी दूसरे कम्प्यूटर में संसाधित करने या सामग्री का अन्तरण करने के लिए ये उपकरण उपयोगी होते हैं। कम्प्यूटर का 'की बोर्ड' टाइपराइटर की भाँति होता है जिसकी सहायता से व्यक्ति संगणक को आदेश, संदेश व डाटा देता है। टाइप हुआ कोई भी सन्देश सर्वप्रथम सेन्ट्रल प्रोसेसिंग यूनिट में जाता है जहाँ उस पर निर्देशानुसार कार्य निष्पादित होता है जिसका परिणाम मॉनीटर की स्क्रीन पर देखा जा सकता है। इस प्रकार व्यक्ति और मशीन के मध्य निरन्तर अन्तर्क्रिया होती रहती है। उपर्युक्त आदेशों के पालन के लिए सी.पी.यू. में पहले से ही तर्कसम्मत, शृंखलाबद्ध प्रोग्राम फीड होते हैं जिनके कारण मशीन कार्य पूरा कर परिणाम दिखाने में समर्थ होती है।

6.3 संगणक के कार्य

असीम क्षमता के धनी इस यन्त्र द्वारा मुख्यतः दो कार्य किए जाते हैं–डाटा संसाधन एवं शब्द संसाधन। कम्प्यूटर में इच्छित सामग्री को संकलित कर उसे नाना प्रकार से संसाधित कर इच्छित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। एकत्रित सामग्री में नवीन सामग्री को जोड़ना, अनचाहे अंशों का लोप, वांछित क्रम में संयोजन, गणितीय क्रियाएँ आदि अनेक कार्य इस मशीन द्वारा अत्यन्त तीव्रता से किए जा सकते हैं। आज कार्यालयों में बिल बनाना, भुगतान का लेखा-जोखा, कम्पनियों का लेखा-जोखा, परीक्षा परिणाम आदि सभी कार्य डाटा संसाधन की देन है। 'शब्द संसाधन' ने आज मुद्रण टंकण के स्वरूप को परिवर्तित कर दिया है। पत्र, लेख, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों के प्रकाशन आदि कार्य इसी क्षेत्र में आते हैं। इन दो प्रमुख कार्यों के अतिरिक्त वर्तनी जाँच, व्याकरण जाँच, स्वतः संशोधन वर्ण पहचान, वाक् से पाठ, पाठ से वाक् तथा सामग्री को अकारादि क्रम में संजोना जैसे कार्य भी कम्प्यूटर के सहायक कार्यक्रम के अन्तर्गत समाहित हैं।

भाषा मानवीय जीवन का आधार है जो मानव को सूचना सम्प्रेषित एवं संग्रहीत करने में समर्थ बनाती है जिसके माध्यम से मानव न केवल विचारों का आदान-प्रदान करता है वरन् अपने भाव, संवेग की अभिव्यक्ति, विभिन्न विषयों की जानकारी, जीवन के विविध पक्षों पर अपने विचार व्यक्त भी करता है और साथ ही इस सभी से सम्बन्धित सूचना भाषा के माध्यम से ग्रहण भी करता है। इस अद्वितीय, अतुलनीय सम्प्रेषण माध्यम का वैज्ञानिक विश्लेषण भाषाविज्ञान कहलाता है। जिसमें भाषा के आकार प्रकार, उसके घटकों, उनके सम्बन्धों एवं कार्यों का विश्लेषण, वैज्ञानिक पद्धति द्वारा किया जाता है। पचास के दशक में भाषाविज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व

परिवर्तन आया। भाषा की रूपात्मक संरचना के स्थान पर उसकी सर्जनात्मकता उसकी प्रजनन क्षमता को महत्त्व दिया गया। इस काल में विकसित भाषिक सिद्धान्तों ने गणितीय संकेतन पद्धति का प्रयोग कर भाषा का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया। यही नहीं रूपात्मक एवं वाक्यीय अभिलक्षणों के साथ-साथ भाषा के आर्थी अभिलक्षणों की पहचान, उनका विश्लेषण भी महत्त्वपूर्ण माना गया। फलतः शब्दावली स्तर पर अनेक कार्य आरम्भ हुए और कोश निर्माण में लगे शोधकर्ताओं ने भाषाध्ययन के क्षेत्र में कम्प्यूटर का प्रयोग आरम्भ किया।

6.4 कृत्रिम मेधा/बुद्धि Artificial intelligence

आज की इस सिमटती दुनिया में अपरिचित संस्कृति एवं भाषा को जानने की ललक आम आदमी में बढ़ती जा रही है। परिणामतः प्राकृतिक भाषाओं को जानने समझने के लिए आवश्यक कम्प्यूटर प्रणाली के विकास में भी बहुत तेजी आयी है। फलतः भाषा के स्वरूप और प्रकार्य के साथ-साथ आज भाषा कैसे कार्य करती है इससे सम्बन्धित समस्याएँ प्राकृतिक भाषा संसाधन के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धि के अन्तर्गत उभर कर सामने आई है। प्रो. सूरजभान सिंह के मतानुसार, "कृत्रिम बुद्धि वास्तव में मानव बुद्धि की कार्य प्रणाली और निर्णय लेने की प्रक्रिया का यंत्रानुकरण या नकल है।" मानवीय मेधा वास्तव में मस्तिष्क में अन्तर्निहित तार्किक नियमों का अनुक्रम है। जो मस्तिष्क में पहले से एकत्रित नियमों द्वारा परिचालित होता है। इन नियमों की पुष्टि अनुभव से होती है। आज विद्वान इन्हीं सूक्ष्म नियमों एवं तर्कों को कम्प्यूटर द्वारा समझने योग्य एल्गोरिथ्म में परिवर्तित कर मशीन के स्मृति कोश में डालने का प्रयास कर रहे हैं। कृत्रिम मेधा को परिभाषित करते हुए मिन्स्की ने कहा,

``the science of making machines do things that would require intelligence if done by men."

1956 में जॉन मेकार्थी ने कृत्रिम मेधा पारिभाषिक शब्द की रचना की। मानव मस्तिष्क की सृजनशीलता एवं विश्लेषण क्षमता की भाँति कम्प्यूटर में भी सृजन और विश्लेषण क्षमता निर्मित करने का प्रयास किया गया जिसे कृत्रिम मेधा नाम दिया गया। वास्तव में कृत्रिम मेधा मानव के कार्य का बौद्धिक अनुकरण होती है जो पहले एकत्रित किए गए नियमों पर निर्भर करती है। मानव मस्तिष्क में सूक्ष्म एवं अमूर्त रूप में स्थित इन नियमों को एल्गोरिथ्म (नियम-शृंखला) के माध्यम से कम्प्यूटर की स्मृति (मेमोरी) में डाल देना ही कम्प्यूटर की कृत्रिम मेधा कहलाती है। किन्तु ध्यान रहे कि इसका

सृष्टा मानव ही है अतः इसे मानवीय मेधा के समकक्ष नहीं माना जा सकता है। यह अवश्य है कि मानव द्वारा किए गए इस विकास ने समय और गति की उस चरम सीमा को छू लिया है जो उसके निर्माता की पहुँच से परे है। आज कृत्रिम मेधा से युक्त नए-नए यन्त्रों की रचना की जा रही है तथा रेलवे आरक्षण, बैंकिंग, ई-लर्निंग, ई-शापिंग, ई-बैंकिंग, पुस्तकालय स्वचलन, कम्प्यूटर गेम्स, मशीनी अनुवाद आदि क्षेत्रों में इसका अनुप्रयोग हो रहा है। अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ भाषा उत्पादन एवं बोधन के क्षेत्र में शोध कार्य हो रहे हैं। विद्वान निरन्तर इस प्रयास में रत हैं कि एक ऐसा कम्प्यूटर विकसित हो जो मानव का सम्प्रेषण साथी बन सके अर्थात् सम्प्रेषण प्रक्रिया के द्वितीय आधार की भूमिका का निर्वहन कर सके।

6.5 संगणक भाषाविज्ञान : प्रकृति एवं स्वरूप

विकास के विविध चरणों को साथ-साथ पार करते हुए भाषाविज्ञान, कम्प्यूटर विज्ञान एवं कृत्रिम मेधा क्षेत्रों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धित योगदान से 1980 में संगणक भाषाविज्ञान/अभिकलनात्मक भाषाविज्ञान विषय (computational linguistics) प्रकाश में आया। अनेक विद्वानों ने इसके लिए प्रकृत भाषा संसाधन (Natural language processing) अभिधान का प्रयोग करते हुए इस नाम को उचित ठहराया क्योंकि वास्तव में देखा जाए तो संगणक भाषाविज्ञान प्रकृत भाषा संसाधन ही करता है। यह कम्प्यूटर विज्ञान और भाषाविज्ञान के विशिष्ट तत्त्वों का समागम है। इसमें एक तरफ जहाँ प्राकृतिक एवं कृत्रिम बुद्धि की प्रक्रियाओं के तत्त्वों का समावेश होता है वहाँ इसकी तरफ सम्प्रेषण विज्ञान के व्याकरण और सूचना विज्ञान के तर्क सिद्धान्त का समावेश रहता है। भाषाविज्ञान में भाषा के नियम समुच्चय का वर्णन जिस रूप में होता है वह कम्प्यूटर के लिए बोधगम्य नहीं होता क्योंकि कम्प्यूटर एल्गोरिथ्म का कोड समझता है प्राकृतिक भाषा के वाक्य को नहीं। अतः आधुनिक भाषाविदों का यह प्रयास रहा है कि प्राकृतिक भाषा के वाक्यों की व्यवस्था और सुगठनता का वर्णन स्पष्ट रूपात्मक आधार पर करें। फलस्वरूप आज भाषाविद् अपनी भाषिक स्थापनाओं/सिद्धान्तों को पुनः परिभाषित कर रहे हैं। संगणक भाषाविज्ञान के क्षेत्र को प्रतिपादित करते हुए प्रो. एस.के. वर्मा ने निम्न विचार प्रस्तुत किए–

``In computational linguistics such areas as automatic syntatic analysis, sentence generation grammar testing, automatic abstracting, information retrieval, stylistic studies, content processing, semantic classification studies, possibly even story

grammars are being investigated."

प्रो. सूरजभान सिंह के अनुसार, "भाषा और कम्प्यूटर के···प्रणालीगत संबंध का अध्ययन अभिकलनात्मक (कम्प्यूटेशनल) भाषाविज्ञान का एक प्रमुख विषय है जिसमें प्राकृतिक भाषा का संसाधन कर कम्प्यूटर से कई प्रकार के ज्ञानात्मक कार्य सम्पन्न किए जाते हैं।"

सम्प्रति प्रकृत भाषा संसाधन व्यवस्थाओं का निर्माण नाना प्रकार के कार्यों के लिए किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत विकसित सिद्धान्तों का प्रयोग प्राकृतिक भाषाओं के संसाधन (एन.एल.पी.), उन्हें समझने, रचने और अर्जित करने के लिए आवश्यक कम्प्यूटर प्रणाली के निर्माण के लिए किया जाता है। इससे एक ऐसा व्यापक नेटवर्क तैयार हो जाता है, जिससे सिद्धान्तों का निरन्तर परीक्षण और प्रतिपुष्टि (फीड बैक) होती रहती है। प्रत्येक एन.एल.पी. व्यवस्था में व्याकरण तथा प्रक्रियात्मक घटक होते हैं। व्याकरण का प्रयोग प्रक्रियात्मक घटकों द्वारा विश्लेषण एवं प्रजनन के लिए किया जाता है, जैसे–प्रश्न उत्तर व्यवस्था में एक प्रोग्राम का समुच्चय होता है। कम्प्यूटर प्रोग्राम प्रत्येक प्रश्न को निश्चित भाषा के व्याकरण की सहायता से विश्लेषित करता है और उसकी अर्थ व्यवस्था को स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए तार्किक उत्तर प्रस्तुत करता है। ऐसा व्याकरण जो कम संगणकीय स्रोतों द्वारा शीघ्र संसाधन करे, एक उपयुक्त संगणकीय व्याकरण कहलाता है।

6.6 मशीनी अनुवाद

मशीनी अनुवाद का अर्थ है, अनुवाद की ऐसी प्रक्रिया जिसमें कम्प्यूटर द्वारा एक भाषा से दूसरी भाषा में स्वतः अनुवाद हो। यह वस्तुतः कम्प्यूटर विज्ञान और भाषाविज्ञान का मिश्रित रूप है। किन्तु कोई भी कम्प्यूटर तब तक अनुवाद नहीं कर सकता है जब तक मानव इनपुट सामग्री में अर्थ, वाक्य रचना, शब्द रचना, पदबन्ध तथा मुहावरों आदि की व्याकरणिक संरचना का समावेश न करे। मशीनी अनुवाद की इस प्रक्रिया में मानव अनुवाद की जाने वाली सामग्री को कम्प्यूटर में फीड करता है जिसमें पहले से ही दोनों भाषाओं के शब्द, व्याकरणिक नियम, मुहावरे आदि संचित होते हैं जिसकी सहायता से कम्प्यूटर की भीतरी प्रणाली फीड की गई सामग्री को स्वतः दूसरी भाषा में अनूदित कर आउटपुट के रूप में प्रस्तुत कर देती है।

एक भाषा की सामग्री दूसरी भाषा में अनूदित करने का तात्पर्य मात्र शब्दों की

स्थानापत्ति नहीं होता है वरन् अनुवाद एक विचार प्रक्रिया है। यह एक ऐसी बौद्धिक प्रक्रिया है जिसमें विश्लेषण, अन्तरण और पुनर्गठन तीन चरण होते हैं। शब्द, वाक्य और अर्थ के स्तर पर भाषाओं में व्याप्त संदिग्धता को समझकर जब तक नियमबद्ध नहीं कर लिया जाता तब तक मशीनी अनुवाद की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। मशीनी अनुवाद में भी भाषा संबंधी संश्लेषण, विश्लेषण और संसाधन के सभी पक्ष समाहित होते हैं। अनुवाद प्रक्रिया में विश्लेषण से तात्पर्य मूलपाठ के अर्थ ग्रहण और बोधन से लिया जाता है। अनुवादक पाठ को भलीभाँति पढ़कर समझने का प्रयास करता है। वह पाठ के अन्तर्गत घटित सम्बन्धों और प्रकार्यों को समझता है। इसे पद-अन्वय (parsing) की संज्ञा दी जाती है। मशीनी अनुवाद में यह कार्य कम्प्यूटर द्वारा किया जाता है। पार्सर वाक्य के घटकों के मध्य कार्यरत प्रकार्यात्मक संबंधों की पहचान करता है। यह कार्य उसकी मेमोरी/स्मृतिकोश में विद्यमान उपयुक्त एल्गोरिथ्म की सहायता से होता है। वाक्य के पद अन्वय तथा तत्सम्बन्धी नियम जितने सटीक होंगे अनुवाद उतना ही शुद्ध होगा।

अन्तरण के चरण में अनुवादक अनूदित सामग्री के अर्थ को लक्ष्य भाषा में अन्तरित करता है। लक्ष्य भाषा में उपलब्ध समतुल्यों को खोजकर उपयुक्त समतुल्य का चयन करता है। इस चरण में अनुवाद के अनुभव, ज्ञान आदि की विशेष भूमिका रहती है। मशीनी अनुवाद प्रक्रिया में यह कार्य 'लेक्सिकन ट्रॉन्सफर' द्वारा किया जाता है। यह स्रोत भाषा पाठ में आगत शब्दों एवं अभिव्यक्तियों के लिए समानार्थी शब्द प्रदान करता है।

अनुवाद का तीसरा चरण पुनर्गठन कहलाता है। अनुवादक स्रोत भाषा के पाठ की संरचना एवं शैली को लक्ष्य भाषा की संरचना, शैली एवं सहप्रयोग के नियमों के अनुरूप गठित करता है। इस प्रक्रिया में कहीं कुछ छूट जाता है तो कहीं कुछ जुड़ जाता है। यही नहीं कतिपय अंशों का शाब्दिक अनुवाद हो जाता है तो कहीं अनुवादक भाव को केन्द्र में रख कार्य करता है। मशीनी अनुवाद में यह चरण जेनरेटर द्वारा पूर्ण होता है। इसका कार्य स्रोत भाषा शब्दों, पदबन्ध एवं वाक्य के लिए लक्ष्य भाषा में समानार्थी इकाइयों का सृजन करना होता है। यह अपनी सामग्री 'लेक्सिकन ट्राँसफर' से प्राप्त करता है। जेनरेटर से लक्ष्य भाषा के अनुवाद को लिपि, शब्द, वाक्य, शैली तथा रूप व आकार प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि मशीनी अनुवाद में निम्नलिखित चरणों की आवश्यकता होती है–

6.6.1 कार्पोरा

मशीनी अनुवाद की प्रणाली विकसित करने की प्रथम आवश्यकता कार्पोरा है। कार्पोरा से अभिप्राय क्षेत्र विशेष से संबंधित अध्ययन सामग्री से होता है। इसकी सहायता से किसी विषय की सम्पूर्ण शब्दावली प्राप्त की जा सकती है। शब्दावली एकत्रित करने के उपरान्त वाक्य संरचना का विश्लेषण किया जाता है।

6.6.2 पार्सर

गणतीय पद्धति के माध्यम से अंकित व्याकरण पार्सर कहलाता है। स्रोत भाषा को संरचनात्मक विशिष्टताओं के आधार पर इस व्याकरण की रचना की जाती है। इसकी सहायता से व्याकरणिक दृष्टि से शुद्ध वाक्यों का भी ज्ञान होता है। यह शाब्दिक तत्त्वों की खोज कर शुद्ध वाक्यों का पद निरूपक वृक्ष निर्मित करता है। इस प्रकार स्रोत भाषा का वाक्यपरक एवं शाब्दिक संदिग्धताओं को दूर करने का कार्य भी पार्सर करता है। ये सभी कार्य रीतिबद्ध व्याकरण पर निर्भर करते हैं अतः यदि स्रोत भाषा का व्याकरण सही और रीतिबद्ध नहीं है तो कम्प्यूटर के लिए उसका पार्सर बनाना कठिन सिद्ध होगा।

6.6.3 जनरेटर

पार्सर से आए शब्दों द्वारा लक्ष्य भाषा की संरचनानुसार वाक्य गठन का कार्य जनरेटर करता है।

6.6.4 अंतरण कोश

पार्सर द्वारा प्राप्त स्रोत भाषा के शब्दों की व्याकरणिक कोटि के आधार पर लक्ष्य भाषा के शब्दों को चुनने का कार्य इस कोश पर निर्भर करता है।

6.6.5 अंतरण व्याकरण

यह पार्सर द्वारा प्राप्त व्याकरणिक नियमों के आधार पर स्रोत भाषा के वाक्यों को विश्लेषित कर उन्हें लक्ष्य भाषा संरचना के अनुरूप अंतरित करने का कार्य करता है। किस नियम का पालन हो या किस नियम की आवश्यकता नहीं है, जैसे प्रश्नों को सुलझाता हुआ संदिग्धता की स्थिति से बचता हुआ यह लक्ष्य भाषा की संरचना के अनुरूप वाक्यों को प्रजनित करता है।

इस प्रकार इन विविध चरणों को पार कर आउटपुट के रूप में अनुवाद सामने आता है। इन चरणों को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए कम्प्यूटर में निम्नलिखित जानकारियाँ फीड करनी आवश्यक होती हैं–

* शब्द संरचना संबंधी ज्ञान
* अर्थ संबंधी ज्ञान
* वाक्य विन्यास संबंधी जानकारी
* व्यावहारिक/संदर्भ ज्ञान

स्पष्ट है कि कम्प्यूटर से अनुवाद करने के लिए मनुष्य को उसमें अपेक्षित जानकारी फीड करनी पड़ती है और समुचित आदेश देने पड़ते हैं। प्रायः विद्वान मशीनी अनुवाद की तीन पद्धतियों की चर्चा करते हैं–

(i) प्रत्यक्ष पद्धति direct method

इस पद्धति का विकास 1964 में रूसी-अंग्रेजी अनुवाद के सन्दर्भ में हुआ था। इस पद्धति में स्रोत भाषा पाठ के प्रत्येक वाक्य को लगभग दस अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक अवस्था का निर्गम (आउटपुट) अगली अवस्था के लिए आगम (इनपुट) का काम करता है। इस पद्धति में पद अन्वय का विशेष महत्त्व नहीं है। यह मूलतः दोनों भाषाओं के शब्दकोशों में उपलब्ध जानकारी, शब्द रचना के स्थूल नियमों तथा सतही वाक्य साँचों पर कार्य करती है। इस अनुवाद की शुद्धता 60 से 70 प्रतिशत मानी जाती है।

(ii) अन्तरण पद्धति transfer method

इसमें सर्वप्रथम पाठ के वाक्य की अमूर्त रूप में पदव्याख्या की जाती है। तत्पश्चात स्रोत भाषा के वाक्य को लक्ष्य भाषा के समतुल्य संरचना में अन्तरित किया जाता है और अन्त में प्राप्त आउटपुट को लक्ष्य भाषा में पुनर्गठित किया जाता है।

(iii) अन्तराभाषिक पद्धति Interlingual method

इसे माध्यम पद्धति भी कहा जाता है। इसका विकास अन्तरण पद्धति के विकल्प रूप में हुआ है इस पद्धति में स्रोत और लक्ष्य के मध्य एक भाषा का सृजन किया जाता है। यह भाषा रूप प्राकृतिक न होकर एक ऐसी भाषा निरपेक्ष-भाषा होती है जिसमें

जागतिक वास्तविकताओं को संकल्पना के प्रतीक रूप में निरूपित किया जाता है। इन संकल्पनाओं को कई आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है जहाँ कुछ के मध्य अंग-अंगी सम्बन्ध मिलता है तो कतिपय अन्य एक जाति के सदस्य होने के नाते परस्पर सम्बन्धित होती हैं। संकल्पनाओं के प्रतीक रूप में निरूपण के पश्चात जेनरेटर इस माध्यम भाषा के प्रस्तुतिकरण को लक्ष्य भाषा के पाठ में रूपान्तरित करता है। इस प्रकार स्रोत भाषा पाठ की समझ के अनुरूप लक्ष्य भाषा में सृजन होता है। माध्यम भाषा इन घटकों के बीच सेतु या कड़ी की भूमिका निभाती है जो दोनों को एक दूसरे से जोड़े रखती है। माध्यम भाषा की प्रस्तुतियों को सार्वभौमिक माना जाता है। इस विधि की सहायता से दो से अधिक भाषाओं के मध्य परस्पर अनुवाद किया जा सकता है। आज चीन, जापान, थाईलैंड आदि स्थानों पर इस पद्धति का अनुवाद के लिए प्रयोग किया जा रहा है।

6.7 कम्प्यूटर एवं कोश निर्माण

कोश निर्माण का कार्य विस्तृत, श्रमसाध्य एवं जटिल कार्य है। नवीन युग के इस आविष्कार की सहायता से यह कार्य एक सीमा तक सरल हो गया है। आज कम्प्यूटर की सहायता से शब्दों की गणना, वर्णक्रम संयोजन, प्रयोग आवृत्ति की गणना, मुद्रण आदि अनेक कार्य सरलता एवं शीघ्रता से किए जा सकते हैं। कोश निर्माण कार्य तीन चरणों में किया जाता है—

* संकलन
* सम्पादन
* मुद्रण

कोश निर्माण प्रक्रिया में सामग्री संकलन करने में श्रम व समय दोनों लगते हैं। उपलब्ध साहित्य से आवश्यक सामग्री को छाँटकर संकलित किया जाता है। ओ.सी.आर. (optical character recogniser) प्रणाली के विकास के बाद यह कार्य अत्यन्त सरल हो गया है। ओ.सी.आर. मुद्रित अक्षरों को पहचान कर स्वयं कम्प्यूटर के डिस्क या फ्लॉपी में भेज देता है। इस सुविधा के कारण आज स्रोत साहित्य से उद्धरण और शब्द चुनकर लिखने की आवश्यकता नहीं होती और समस्त सामग्री कम्प्यूटर स्मृति कोश में संचित हो जाती है। कम्प्यूटर में प्रयोग आवृत्ति की गणना की सुविधा के माध्यम से एकत्रित सामग्री में आए शब्दों की सूची का निर्माण तथा अकारादि क्रम में उनकी व्यवस्था दोनों ही कार्य सहजता से

हो जाते हैं। यही नही एकत्रित शब्दों को इच्छित क्रम में प्रस्तुत करने की कम्प्यूटर की क्षमता कोशकार के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है जिसका प्रयोग वह अनेक प्रयोजनों के लिए करता है। साथ ही कोशकार द्वारा माँगी गई सूचना को डाटा में से ढूँढ़ कर स्क्रीन पर प्रस्तुत करने की सुविधा भी कम्प्यूटर में होती है। किसी विशिष्ट शब्द का सम्पूर्ण सामग्री में कहाँ-कहाँ किस प्रकार से हुआ है यह समस्त सूचना कोशकार को सरलता से उपलब्ध हो जाती है। पर्यायवाची कोश का निर्माण करते समय कोशकार एकत्रित प्रविष्टियों को आर्थी समूहों में विभाजित करता है इस कार्य हेतु वह प्रत्येक अर्थ समूह की समनुक्रमणिका निर्मित करता है। कम्प्यूटर की सहायता से प्रविष्टियों को आर्थी समूहों में कम समय में सफलता से विभाजित किया जा सकता है। अन्त में कोश के मुद्रण का कार्य होता है। पहले कम्पोजिंग की प्रक्रिया में समस्त कार्य का सत्तर प्रतिशत समय लगता था आज कम्प्यूटर की सहायता से इसमें बहुत कमी आई है। वर्तमान में अक्षर आकार का घटना-बढ़ना, संकेत चिह्नों का प्रयोग, विराम चिह्न आदि कार्य सरलता से होने के कारण मुद्रण की प्रक्रिया कम समय में पूर्ण हो जाती है।

6.8 कम्प्यूटर एवं भाषाशिक्षण

वर्तमान समय में भाषाशिक्षण के क्षेत्र में भी कम्प्यूटर का उपयोग हो रहा है। नई भाषा सीखने की इच्छा रखने वाले कम्प्यूटर की सहायता से बहुत कम समय में प्रभावी ढंग से, भाषा सीख सकते हैं क्योंकि इसके माध्यम से जहाँ उन्हें एक तरफ तत्काल जानकारी प्राप्त होती है वहीं गलतियाँ भी तुरन्त पता चल जाती हैं यही नहीं शिक्षण पाठ संबंधी अभ्यास भी सरलतापूर्वक किए जा सकते हैं। इसे कम्प्यूटर असिस्टेड भाषा शिक्षण (computer assisted language teaching CALT) कहते हैं। कम्प्यूटर साधित शिक्षण के लिए संलेखन प्रणाली (authoring system) की आवश्यकता होती है। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य शैक्षणिक क्रमादेशों (educational programmes) का निर्माण है। संलेखन सामग्री के तीन चरण होते हैं–

* उपयोगिता क्रमादेश प्रणाली
* संलेखन भाषाएँ
* संलेखन क्रमादेश

इन तीनों का उपयोग करते हुए अध्यापक पाठ सामग्री का निर्माण करता है जो

प्रश्नोत्तर रूप में या चित्र व्यवस्था रूप में हो सकती है। इसके अतिरिक्त श्रव्य-दृश्यात्मक उपकरणों का उपयोग भी इस प्रणाली के माध्यम से किया जाता है। भारतीय भाषाओं के शिक्षण हेतु आज विद्वानों ने यूरोपीय भाषाओं के शिक्षण के लिए प्रचलित प्रणाली से इतर स्वतन्त्र प्रणाली का विकास किया है। भारतीय हिन्दी प्रचार सभा के मद्रास केन्द्र में जिसका सफलतापूर्वक उपयोग हो रहा है। भाषा शिक्षण के कार्यक्रम प्रायः मल्टीमीडिया पर आधारित होते हैं जिनमें प्रसंगानुकूल उचित सन्दर्भों में छात्र एक साथ लिखित पाठ, ध्वनि चित्र, एनीमेशन आदि देख-सुन सकता है। इन कार्यक्रमों में कम्प्यूटर की अधिगम प्रक्रिया पर नियन्त्रण भी होता है। विद्यार्थी के उच्चारण को सुधारना; भाषा प्रयोग का मूल्यांकन आदि सुविधाओं के कारण भाषा शिक्षण के ये कार्यक्रम आज बहुत पसन्द किए जा रहे हैं क्योंकि छात्र अपनी आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार इच्छित गति से भाषा अर्जित कर सकता है। कम्प्यूटर द्वारा शिक्षण क्षेत्र में किए गए प्रयासों में 'समरूप शिक्षा' विशेष रूप से प्रमुख है। इसमें कम्प्यूटर द्वारा कृत्रिम व्यवहार के कार्यक्रम बनाए जाते हैं जैसे—यदि छात्र हवाई जहाज उड़ाने की प्रक्रिया सीखना चाहता है तो वह कम्प्यूटर द्वारा इस कला को सीख सकता है। इसमें उसे हवाई जहाज उड़ाना, लैंड करना आदि सभी की पूर्ण जानकारी दी जाती है।

समकालीन शिक्षा के साधन के रूप में आज इन्टरनेट की महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इन्टरनेट उन सभी के लिए सरल एवं सुविधाजनक माध्यम है जो व्यस्तता, दायित्त्वों या स्वास्थ्य जन्य समस्याओं के चलते औपचारिक शिक्षा संस्थानों तक नहीं पहुँच पाते हैं। ये लोग इन्टरनेट द्वारा अपने विषय या रुचि संबंधित पुस्तकों, लेखों एवं उपयोगी सन्दर्भ सामग्री को अत्यन्त सरलता से ढूँढ़ कर पढ़ सकते हैं।

6.9 भाषा प्रौद्योगिकी

यह एक अंतरनुशासनिक क्षेत्र है जिसका आरम्भ बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। इसका केन्द्रीय घटक शब्द 'भाषा' शब्द 'भाषाविज्ञान' से ग्रहण किया गया है और द्वितीय घटक 'प्रौद्योगिकी' वर्तमान भूमंडलीकरण एवं उपभोक्तावाद की देन है जहाँ हर कार्य शीघ्रता से होना अपेक्षित है। यह शब्द भी उसी भाव को सूचित करता है। भाषा प्रौद्योगिकी एवं भाषायी कम्प्यूटरीकण को कतिपय विद्वान समान मानते हैं जो उचित नहीं है क्यों भाषा प्रौद्योगिकी एक विराट संकल्पना है संगणक जिसका एक अंश मात्र है। संगणक के विकास के पूर्व भी भाषा के विश्लेषण के लिए कई यन्त्रों का

उपयोग किया जा रहा था। जैसे—बधिरों हेतु भाषा बोध शिक्षण, वाचन एवं श्रवण के लिए बनाए गए उपकरण। वर्तमान में इन यन्त्रों द्वारा किए जा रहे कार्यों के लिए नवीन साफ्टवेयर के विकास के साथ ये कार्य कम्प्यूटर की सहायता से भी किए जा रहे हैं। सम्भवतः यही कारण है कि कतिपय विद्वान भाषा प्रौद्योगिकी एवं कम्प्यूटरीकरण में भिन्नता नहीं स्थापित करते हैं यह निश्चित है कि कम्प्यूटर के आगमन के बाद भाषा मापन एवं अध्ययन में उपयोग किए जा रहे प्राचीन उपकरणों का महत्त्व समाप्त हो गया है और आज इनका स्थान आधुनिक एवं संवेदनशील कम्प्यूटरीकृत भाषा प्रयोगशालाओं ने ले लिया है।

***

7.0 प्रोक्ति विश्लेषण

7.1 प्रोक्ति : प्रकृति एवं स्वरूप

संरचनात्मक भाषाविद् भाषा विश्लेषण या व्याकरण की बृहत्तम इकाई के रूप में वाक्य को स्वीकारते हैं। उनके विचारानुसार वाक्य एक ऐसी स्वयंभू एवं पूर्ण इकाई है जो स्वतन्त्र होती है। जहाँ अन्य भाषिक इकाईयों- स्वन, रूप, शब्द, पदबन्ध तथा उपवाक्य की सत्ता वाक्य पर आश्रित होती है वहाँ वाक्य किसी पर निर्भर नहीं करता। कह सकते हैं कि व्याकरणिक सूचना की दृष्टि से भाषा की आधारिक इकाई वाक्य है। ध्यान रहे कि भाषा एक सामाजिक संघटना है जिसे भाषाभाषी समुदाय, सामाजिक सन्दर्भ और समाज में प्राप्त सम्बन्धों के जाल से विलग नहीं किया जा सकता है। विशिष्ट सन्दर्भ में एक वक्ता जिस भाषा रूप का चयन करता है उसके पीछे अनेक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ कार्य करती हैं। यही नहीं वक्ता की बात को समझना, उसके आशय को पकड़ना उसमें निहित गूढ़ताओं तक पहुँचना आदि अनेक जानकारियों का ज्ञान सम्प्रेषण का अभिन्न अंग होता है। सम्प्रेषण की दृष्टि से वक्ता सिर्फ एक वाक्य नहीं बोलता है वह वार्तालाप या बातचीत करता है जो एक वाक्य तक भी सीमित हो सकता है या फिर वाक्यों का समुच्चय होता है। अतः कह सकते हैं कि प्रायः भाषा व्यवहार केवल वाक्यों तक सीमित नहीं होता है। सम्प्रेषण में अंतिम इकाई के रूप में वाक्य को स्वीकारना उचित नहीं है क्योंकि भावों या विचारों की अभिव्यक्ति अपने आप में एक संरचित, व्यवस्थित इकाई होती है जिसमें एकाधिक वाक्य गुच्छ रूप में आते हैं और इन वाक्यों के मध्य संयोजन के कतिपय नियम कार्यरत रहते हैं। वाक्य से बृहत्तर भाषिक इकाइयों से निर्मित वाक्य समूह को प्रोक्ति की संज्ञा दी जाती है। अंग्रेजी में इसे discourse कहते हैं। दूसरे शब्दों में एक प्रोक्ति उक्तियों द्वारा निर्मित, वाक्य से बड़ी, ऐसी इकाई है जो एक वाक् व्यापार कही जा सकती है। इसमें आगत/प्रयुक्त उक्तियों में परस्पर सम्बद्धता, निरन्तरता, विषय की समानता आदि गुण प्राप्त होते हैं। इसका

सम्बन्ध वाक्य एवं उक्ति की सीमा से परे भाषा प्रयोग से होता है। जहाँ रूप, पदबन्ध, उपवाक्य आदि भाषा की व्याकरणिक इकाईयाँ हैं वहाँ प्रोक्ति भाषा की प्रकार्यात्मक इकाई है। प्रत्येक भाषा में प्रयोग संबंधी ऐसे नियम होते हैं जिनके ज्ञान के अभाव में व्याकरणिक नियमों (वाक्य निर्माण के नियम) को जानना व्यर्थ है। प्रयोग के इन्हीं नियमों को ध्यान में रख कर पूर्णार्थाभिव्यक्ति के लिए जब वक्ता एकाधिक वाक्यों का प्रयोग करता है तो उस छोटे से छोटे वाक्य प्रसंग को 'प्रोक्ति' कहा जाता है।

भारतीय परम्परा में आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' में 'महावाक्य' की संकल्पना को परिभाषित करते हुए कहा–

स्वार्थ बोधे समाप्तना मङ्गाङ्गित्वा गत्वव्यपेक्षया
वाक्यानामेक वाक्यव्यं पुनः सहत्य जायते।

अर्थात् महावाक्य, अपने-अपने अर्थ का सम्प्रेषण कर समाप्त हुए, परन्तु सन्देश की एकता/समानता के स्तर पर अंग-अंगी भाव से पुनः एक दूसरे से मिले, वाक्यों का समूह है। भारतीय भाषादर्शन की महावाक्य की इस संकल्पना को प्रोक्ति के निकटतम कहा जा सकता है। महावाक्य का प्रयोग संस्कृत में 'तत्वमसि' अथवा 'ओउम् भूर्भुवः स्वः' जैसे छोटे से छोटे वाक्य से लेकर एक सम्पूर्ण महाकाव्य तक के लिए किया गया है।

पाश्चात्य परम्परा में 1952 में भाषाविद् जैलिंग हैरिस ने सर्वप्रथम 'प्रोक्ति' शब्द का व्यवहार किया। उनके अनुसार 'वाक्यों का संयोग' प्रोक्ति कहलाता है। उन्होंने पाठ और उसके सामाजिक सन्दर्भ के संबंध को जानने का प्रयास किया। हैरिस ने अपने अध्ययन में प्रोक्ति की चर्चा अवश्य की किन्तु इनके अध्ययन विश्लेषण का केन्द्र वाक्य ही रहा। प्राग सम्प्रदाय से प्रभावित ब्रिटिश सम्प्रदाय के विद्वान हैलिडे द्वारा प्रतिपादित प्रकार्यात्मक उपागम ने भी प्रोक्ति विश्लेषण को प्रभावित किया। अमरीका में यह मुख्य रूप से गुम्पर्ज तथा हाइम्स के विचारों से प्रभावित हुआ। इन विद्वानों ने वाक् व्यवहार के विभिन्न भेदों जैसे कहानी सुनाना, अभिवादन के तरीके तथा भिन्न सामाजिक स्थितियों में होने वाले वार्तालाप का अध्ययन किया। अमरीकी परम्परा में जिसे 'वार्तालाप विश्लेषण' कहा गया वह वास्तव में प्रोक्ति विश्लेषण का ही अंग था। 1980 में चॉमस्की ने 'प्रोक्ति क्षमता' को 'भाषिक क्षमता' का अंग माना किन्तु इसके अध्ययन विश्लेषण की दिशा में उचित प्रयास नहीं किए। वास्तव में प्रोक्ति एवं प्रोक्ति विश्लेषण पाश्चात्य जगत को समाजभाषाविज्ञान की देन है।

यदि भाषिक सम्प्रेषण पर ध्यान दिया जाए तो पता चलता है कि प्रायः कोई स्वतन्त्र, पूर्ण वाक्य सम्प्रेषण की इकाई के रूप में कार्य नहीं करता है वरन् वार्तालाप के बीच कई बार हम एक शब्द, पदबन्ध या उपवाक्य का भी प्रयोग कर लेते हैं, जैसे–

वक्ता–आज कॉलेज जाओगे?

श्रोता–हाँ ऽऽ शायद, नहीं।

वक्ता–क्यों?

इसी प्रकार कई बार हम एकाधिक सम्बन्धित वाक्यों के समूह के रूप में वार्तालाप करते हैं, जैसे–

वक्ता–असल में, मुझे हॉस्पिटल जाना पड़ेगा, अभी मेरी चाची एडमिट हैं न इसलिए···।

उपर्युक्त दोनों उदाहरण प्रोक्ति की सीमा में आते हैं। प्रोक्ति लिखित एवं मौखिक दोनों रूपों में मिलती है। इसके अतिरिक्त सन्दर्भ, विषय, प्रयोक्ता के आधार पर इसके कई भेद हो सकते हैं जैसे–साक्षात्कार, धार्मिक उपदेश, राजनैतिक भाषण, पूछताछ आदि।

7.2 प्रोक्ति विश्लेषण से तात्पर्य

प्रोक्ति का अध्ययन विश्लेषण करने वाली पद्धति प्रोक्ति विश्लेषण (discourse analysis) कहलाती है। प्रोक्ति विश्लेषण को परिभाषित करते हुए माइकेल स्टब्बस ने कहा "any study which is not dealing with

(a) single sentence,

(b) contrived by the lingiust

(c) out of contexl, may be called discourse analysis."

माइकेल मैककार्थी के विचारानुसार, 'Discourse analysis is concerned with the study of relationship between language and the contexts in which it is used.'

अकमाज़िअन के शब्दों में, the study of discourse is the study of units of

language and language use consisting of more than a single sentence, but connected by some system of related topics.

पॉटर के मतानुसार, "... has an analytic commitment to studying discourse as texts and talk in social practices. That is, the focus is not on language as an abstract entity such as a lexicon and set of grammatical rules, a system of differences (in structuralism), a set of rules for transforming statements. Instead, it is the medium for interaction; analysis of discourse becomes, then, analysis of what people do.

भाषाविद् विजय राघव रेड्डी प्रोक्ति विश्लेषण को परिभाषित करते हुए कहते हैं, "विशिष्ट प्रयोजन, भाषा व्यवहार में लगे व्यक्तियों की भूमिका, उनका सामाजिक स्तर, वाक् क्रिया का विषय और अभिव्यक्ति का भाषिक माध्यम आदि की भिन्नताओं के संदर्भ में संप्रेषणगत जो स्थितियाँ होती हैं, उन स्थितियों में भाषिक उच्चारों का निर्माण तथा उनका औचित्यपूर्ण उपयोग कैसे किया जाए, ये प्रमुख बातें होती हैं, जिनको जानने की आवश्यकता भाषा के प्रयोक्ता को होती है। भाषा को काम में लाने वाले तरीके से सम्बन्धित इस पक्ष को भाषा का प्रयोग पक्ष कहा जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन को प्रोक्ति (डिस्कोर्स) विश्लेषण कहा जाता है।" पाश्चात्य परम्परा का अध्ययन इस तथ्य का संकेतक है कि प्रोक्ति विश्लेषण का आरम्भ दर्शन, समाजशास्त्र साहित्य एवं भाषाविज्ञान कई क्षेत्रों में हुआ और सम्प्रति यह एक अन्तर्विषयी विश्लेषण पद्धति के रूप में प्रचलित है जिसका उपयोग मानवविज्ञान, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों में भी किया जा रहा है। एक प्रोक्ति विश्लेषक भाषा प्रयोग का अध्ययन करता है। सभी प्रकार के लिखित पाठ एवं मौखिक सामग्री सामान्य बातचीत से लेकर उच्च स्तरीय बैठकों में होने वाली चर्चाएं इनके अध्ययन की परिधि में आते हैं।

7.3 पाठ एवं प्रोक्ति

विश्लेषण एवं वर्णन के उद्देश्य से किसी भाषा का रिकार्ड किया गया नमूना 'पाठ' (text) कहलाता है। यह लिखित अथवा मौखिक किसी भी रूप में हो सकता है। भाषाविदों ने पाठ को भाषा की एक ऐसी इकाई माना जिसका निश्चित सम्प्रेषणात्मक प्रकार्य होता है। संसक्ति, संयोग तथा सूचना प्रधानता इसके प्रमुख लक्षण होते हैं। कुछ विद्वान पाठ और प्रोक्ति में अन्तर नहीं मानते हैं जबकि कुछ अन्य भाषाविदों के

अनुसार इन दोनों में थोड़ा अन्तर होता है। वुड लिन्डा के विचारानुसार भाषा का समाज में समस्त बोला एवं लिखा गया प्रयोग (एवं पाठ) प्रोक्ति कहलाता है। डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा के अनुसार सामान्य सम्प्रेषण प्रक्रिया हो या साहित्यिक, संदेश भाषा की बुनावट में निहित होता है। सम्प्रेषण प्रक्रिया में प्रयुक्त भाषा की यह बुनावट ही पाठ (text) है।

उपर्युक्त चर्चा करते हुए श्री शर्मा पाठ की जिन विशेषताओं का उल्लेख करते हैं, जैसे- संसक्ति, संगति, सूचनापरकता आदि वह वास्तव में प्रोक्ति के आधारिक गुण भी माने जाते हैं अतः कह सकते हैं वह पाठ एवं प्रोक्ति में भेद नहीं करते हैं। उनका मानना है कि पाठ एक भौतिक उपादान है जबकि प्रोक्ति अभिव्यक्ति और निर्वचन की गत्यात्मक प्रक्रिया है। भाषाविद् वैन डिक के मतानुसार " text refers to on abstract theoretical construct which is realized as discourse" स्पष्ट है कि वैन डिक पाठ को अमूर्त सैद्धान्तिक रचक मानते हैं जिसका मूर्त रूप प्रोक्ति है। इसके विपरीत हैलिडे का मानना है कि 'language being actualized in text" अर्थात् भाषा पाठ के रूप में मूर्तिमान होती है। विडोसन दोनों में अन्तर करते हुए, 'sentences in combination' को पाठ कहते हैं जबकि 'sentences in use' को प्रोक्ति। स्पष्ट है कि इन्होंने प्रोक्ति को प्रकार्यात्मक आधार पर परिभाषित किया। 1988 में राबर्ट द बाउग्रान्दे ने अपने पाठ भाषाविज्ञान के प्रारूप में पाठ को परिभाषित करते हुए कहा, ''भाषा का स्वाभाविक प्रयोग पाठ है "= the naturally occurring manifestation of language is text'' इस प्रकार परस्पर सुसंगत एवं सम्बद्ध पाठ का समुच्चय प्रोक्ति का निर्माण करता है "= a set of mutually relevant text constitutes a discourse" इन्होंने निम्नलिखित सात निकषों का उल्लेख किया जिनकी कसौटी पर खरा उतरने पर किसी वाक्य समुच्चय को पाठ कहा जा सकता है–

संसक्ति	cohesion
संगति	coherence
स्वीकार्यता	acceptibility
वस्तुरिच्छा	intentionality
सूचनापरकता	Informativity

स्थितिपरकता situationality

अन्तःपाठात्मकता Intertextuality

ब्राउन और यूल का मानना है कि पाठ एक पारिभाषिक शब्द है जो किसी सम्प्रेषण कार्य का मौखिक रिकार्ड होता है जबकि इसी पाठ का सृजन करने वाली गत्यात्मक प्रक्रिया प्रोक्ति होती है।

उपर्युक्त चर्चा के निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि पाठ से तात्पर्य भाषिक सत्व (linguistic entity) से है तथा प्रोक्ति गत्यात्मक प्रक्रिया और प्रणाली को सन्दर्भित करती है। दूसरे शब्दों में पाठ यथार्थ/वास्तविक भाषिक सत्व का प्रत्यक्षीकरण है और प्रोक्ति प्रत्यक्षीकरण का प्रक्रम/प्रक्रिया। प्रोक्ति विश्लेषण अर्थ निर्धारण की प्रक्रियाओं और उनके विश्लेषण पर बल देता है जबकि पाठ भाषाविज्ञान में पाठ के उत्पादन एवं निर्वचन पर ध्यान दिया जाता है। सरल शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि यदि एक पेन्टर की दुकान पर रखे हुए बोर्ड में लिखा है 'आगे रास्ता बन्द है' यहाँ यह एक पाठ का उदाहरण है किन्तु यही बोर्ड जब उपयुक्त स्थान पर लगा दिया जाए तो वहाँ सही सन्दर्भ के कारण प्रोक्ति का अंग हो जाएगा जो सड़क पर आने जाने वाले लोगों को विशिष्ट सूचना प्रेषित करेगा। इस प्रकार जहाँ प्रथम परिस्थिति में एक भाषिक सत्व के रूप में वह पाठ है वही द्वितीय सन्दर्भ में प्रोक्ति के रूप में घटित हो रहा है। पाठ एवं प्रोक्ति को पर्याय के रूप में स्वीकार करने वाले विद्वान प्रोक्ति विश्लेषण के स्थान पर 'पाठभाषाविज्ञान' (text linguistics) नाम को अधिक उचित मानते हैं। पाठ वास्तविक भाषा व्यवहार की सामग्री की इकाई है जिसे उसके घटकों का समूहमात्र कहना गलत होगा। पाठ एक ऐसी विन्यासक्रमी शृंखला है जिसमें सूचना का प्रवाह चलता रहता है।

7.4 संसक्ति

प्रत्येक पाठ के मध्य एक विशिष्ट व्यवस्था कार्य करती है जो वाक्य की व्यवस्था से भिन्न होती है। पाठ के मध्य घटित यह संबंध अथवा उसको जोड़ने वाली ये कड़ियाँ संसक्ति कहलाती हैं। यूल के मतानुसार, cohesion... the ties and connections which exist within texts. संसक्ति के कारण ही पाठक या श्रोता पाठ का आशय समझ पाता है। निम्नलिखित उदाहरण देखें जिसमें एकाधिक संसक्ति योजक प्रयोग किए गए हैं जिनकी सहायता से पाठ का आशय समझने में सरलता होती है--

'मेरे पिता जी के पास रविन्द्रनाथ टैगोर की जीवनी है। जो उन्होंने कलकत्ता से

बहुत साल पहले खरीदी थी। आज वह किताब बाजार में उपलब्ध नहीं है और इसी वजह से अमूल्य कही जा सकती है।'

ध्यान दें कि इस उदाहरण के विभिन्न वाक्यों को सर्वनाम, संयोजक आदि शब्दों के द्वारा परस्पर जोड़ा गया है। इनमें संसक्ति की विशेषता मिलती है जो इन्हें पाठ के रूप में निर्धारित करती है।

डेविड क्रिस्टल के शब्दों में "... features of an utterance or text which link different parts of sentences or larger units of aiscourse... (are called cohesion)."

स्पष्ट है कि पाठ के बाह्य तल पर कार्यरत वे समस्त युक्तियाँ जिनके द्वारा पाठ के घटक परस्पर निश्चित अनुक्रम में जुड़ते हैं संसक्ति के अन्तर्गत समाहित होते हैं। इन युक्तियों का विश्लेषण लेखक या वक्ता की भाषा संरचना, संरचना के अभिलक्षणों को प्रकाशित करता है। साथ ही हर भाषा में यह युक्तियाँ भिन्न प्रकार से कार्य करती हैं।

7.5 संगति

पाठ के वाक्यों को सन्देश की एकता से जोड़ने वाला तत्व संगति कहलाता है। *यह पाठ को सार्थकता प्रदान करती है। वास्तव में संगति पाठक एवं श्रोता में स्थित होती* है क्योंकि पाठ को पढ़ एवं सुनकर ये अपने-अपने अनुभव के आधार पर उसका आशय ग्रहण करते हैं। कह सकते हैं संगति का संबंध पाठ के कथ्य संसार के सूत्रों कीं पारस्परिक सम्बद्धता से होता है। संगति आन्तरिक तल का वैशिष्ठय है। किसी उक्ति का निर्वचन मात्र उसके द्वारा व्यक्त प्रकारता द्वारा नहीं होता वरन् वह श्रोता/पाठक के अनुमान को पुष्ट करती है, नवीन सूचना देती है; पूर्व स्थापित प्रमेयों का खण्डन करती है। यूल के विचारानुसार, "the concept of coherence is not something which exists in the language, but something which exists is people."

डेविड क्रिस्टल के मतानुसार, "discourse analysis involves study of such factors an the language useris knowledge of the world, the inferences they make and the assumptions they hold..." भाषा प्रयोक्ता के मस्तिष्क में विविध प्रकार का ज्ञान संचित रहता है। श्रोता के रूप में भाषिक संदेश प्राप्त करने पर वह अपने पूर्व संचित ज्ञान के आधार पर अर्थ निर्धारण एवं ग्रहण करता है। यह समस्त निर्वचन का आधार होती है।

7.6 स्वीकार्यता

स्वीकार्यता एवं अभिप्रायता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहाँ स्वीकार्यता श्रोता अभिमुखी होती है वहाँ अभिप्रायता वक्ता अभिमुखी। भाषा प्रयोक्ता का आशय सन्दर्भ से मेल खाना चाहिए जिससे वह श्रोता को स्वीकार्य हो। यही नहीं वक्ता एवं श्रोता यदि वार्तालाप को बढ़ाने के सप्रयास संलग्न रहते हैं तो इसे भी स्वीकार्यता का ही भाग मानना चाहिए।

7.7 सूचनापरकता

कोई सूचना किस सीमा तक श्रोता के लिए नवीन और अप्रत्याशित है इस तथ्य का संकेत सूचनापरकता से मिलता है। यह एक गतिशील अवधारणा है जो एक प्रयोक्ता से दूसरे; एक पाठ से दूसरे पाठ तथा एक सन्दर्भ से दूसरे सन्दर्भ में परिवर्तित हो जाती है।

7.8 स्थितिपरकता

कोई पाठ किस प्रकार प्रतिक्रिया विशेष से सहसम्बन्धित हो स्थिति विशेष पर लागू किया जाता है इसकी चर्चा स्थितिपरकता कहलाती है।

7.9 अन्तःपाठात्मकता

पाठ को उपादेयता देने वाली प्रमुख अवधारणा किसी व्यवस्था या अनुक्रम का प्रत्येक तत्व व्यवस्था के दूसरे तत्वों को सन्दर्भित करता है। पाठ का यही जुड़ाव या अर्थ जो दूसरे पाठ के रूपान्तरण द्वारा प्राप्त होता है अन्तःपाठात्मकता कहलाता है।

* * *

8.0 अनुवाद विज्ञान

8.1 अनुवाद का अर्थ

'अनुवाद' शब्द अनु उपसर्ग एवं वद् धातु के संयोजन से निर्मित हुआ है। संस्कृत में वद् का अर्थ है बोलना जिसमें घञ् प्रत्यय लगकर 'वाद' बनता है। अनु उपसर्ग 'पीछे', 'बाद' आदि अर्थ में आता है। इस प्रकार अनुवाद का शाब्दिक अर्थ होता है 'किसी के कहने के बाद कहना'। प्राचीन भारतवर्ष की गुरु शिष्य परम्परा में गुरु द्वारा कही बात को शिष्य दोहराते थे और इसे ही अनुवाद या अनुवचन कहा गया। वेद, उपनिषद् एवं निरुक्त में भी इसका प्रयोग 'दुहराने' के ही अर्थ में किया गया। यही नहीं आचार्य पाणिनि, टीकाकार भट्टोजि दीक्षित, कय्यट आदि विद्वानों ने भी अनुवाद शब्द का प्रयोग 'पुनर्कथन' के अर्थ में ही किया। पाणिनि द्वारा रचित सूत्र 'अनुवादे चरणानाम्' की व्याख्या करते हुए भट्टोजि दीक्षित कहते हैं 'ज्ञात बात को कहना' अनुवाद कहलाता है। न्यायसूत्र में चर्चा की गई है कि विधि तथा विहित का पुनर्कथन अनुवाद है। इसको स्पष्ट करते हुए आगे कहा गया है कि अनुवाद और पुनरुक्ति में भेद है। पुनरुक्ति निरर्थक होती है जबकि अनुवाद सार्थक प्रयोजन युक्त 'पुनर्कथन' है।

इस प्रकार भारतीय वाङ्मय में अनुवाद शब्द का प्रयोग 'गुरु की बात का शिष्य द्वारा दुहराया जाना' पश्चातकथन, दुहराना, विधि या विहित का पुनः कथन, सार्थक आवृत्ति आदि अर्थों में हुआ है। आज अनुवाद जिस अर्थ में ग्रहण किया जा रहा है वह प्राचीन वाङ्मय से किञ्चिद् भिन्न है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में अनुवाद की स्थिति पश्चिम से भिन्न थी। ज्ञान विज्ञान की प्रमुख भाषा संस्कृत होने के कारण सम्पूर्ण वाङ्मय इसी में विद्यमान था। अन्य भाषाएँ जीवन के सामान्य कार्य व्यापार के लिए प्रयोग में आती थीं। अतः अन्तरभाषिक अनुवाद की विशेष स्थिति नहीं थी किन्तु

अन्तःभाषिक के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। टीका, भाष्य पद पाठ और निरुक्त रूप में इस अनुवाद प्रकार की एक समृद्ध परम्परा मिलती है। परवर्ती काल में भारतीय साहित्य का विदेशी भाषाओं में अनुवाद किया गया। बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ बौद्ध साहित्य अनेक भाषाओं में अनूदित किया गया। यही नहीं रामायण एवं महाभारत का अनुवाद भी अनेक एशियाई देशों में पहुँचा। आज वैदिक साहित्य ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, रामायण, महाभारत और पुराण के अनुवाद अंग्रेजी, जर्मन आदि भाषाओं में उपलब्ध हैं। मेघदूत, ऋतुसंहार जैसी साहित्यिक रचनाओं के भी अनुवाद मिलते हैं। विदेशी भाषाओं के साथ-साथ प्राचीन भारतीय वाङ्मयों का हिन्दी में भी अनुवाद हुआ।

8.2 अनुवाद का स्वरूप

एक भाषा में रचित किसी सामग्री का दूसरी भाषा में रूपान्तरण अनुवाद कहलाता है। इस प्रकार वह प्रक्रिया जिसके द्वारा हम एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त करते हैं, अनुवाद कहलाती है। सुनने में यह कार्य जितना सरल प्रतीत होता है वास्तव में उतना सरल होता नहीं है क्योंकि जहाँ प्रत्येक भाषा की अपनी विशिष्ट संरचना होती है, उसमें अपने नियम और अपनी व्यवस्था होती है वहीं हर भाषा अपने सांस्कृतिक-सामाजिक परिवेश से बँधी रहती है। इन समस्त विशेषताओं को दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास ही अनुवाद कहलाता है।

अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी अनुवाद को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है। लैटिन से आगत अंग्रेजी शब्द translation का अर्थ है 'पार ले जाना'। पाश्चात्य दृष्टिकोण से अनुवाद कर्ता एक भाषा में कही बात को दूसरी भाषा में ले जाता है। प्रसिद्ध विद्वान नाइडा के मतानुसार, ``Translating consists in producing in the receptor language the closest natural equivalent to the message of the source language first in meaning and seeoudly in style." अर्थात् स्रोत भाषा के संदेश को अर्थ एवं शैली के स्तर पर समतुल्य इकाइयों द्वारा अभिव्यक्त करना अनुवाद कहलाता है। प्रसिद्ध भाषाविद् जे.सी. कैटफोर्ड ने अनुवाद को परिभाषित करते हुए कहा, ``The replacement of textual material in one language by equivalent textual material in another language" तात्पर्य यह है कि किसी भाषा की पाठ सामग्री को दूसरी भाषा की समतुल्य पाठ सामग्री से प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुवाद दो भाषाओं के मध्य घटित प्रक्रिया है। ध्यान रहे कि जिस भाषा से अनुवाद करते हैं उसे स्रोत भाषा (source language) और जिसमें अनुवाद करते हैं उसे लक्ष्य भाषा (target language) कहते हैं। अनुवादक का कार्य स्रोत भाषा में व्यक्त विचारों को संरचना, अर्थ एवं सन्दर्भ का ध्यान रखते हुए लक्ष्य भाषा में अन्तरण करना है। अनुवाद के स्वरूप का दो धरातलों पर स्पष्ट किया जा सकता है-

- व्यापक
- सीमित

अनुवाद का व्यापक स्वरूप यह स्वीकार करता है कि एक प्रतीक व्यवस्था से दूसरी प्रतीक व्यवस्था में किया गया अर्थ का अन्तरण अनुवाद है। इसके तीन प्रकारों की चर्चा की जा सकती है।

(i) अन्तःभाषिक अनुवाद

जब किसी एक भाषा में कही गई बात को उसी भाषा के प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया जाए, यथा–हिन्दी गद्य का अनुवाद हिन्दी पद्य में अथवा किसी लेखक की रचना को पुनः अपनी भाषा में व्यक्त करना भी अन्तःभाषिक का उदाहरण होगा।

(ii) अन्तर भाषिक अनुवाद

दो अलग-अलग भाषाओं के मध्य घटित अनुवाद इस वर्ग में आता है, यथा-हिन्दी से रूसी अथवा हिन्दी से संस्कृत में किया गया अनुवाद कार्य। प्राचीन भारतीय साहित्य ज्योतिष, गणित, दर्शन का अनन्त भण्डार था जिसका प्रचुर साहित्य विश्व की दूसरी भाषाओं में अनूदित होकर लोगों तक पहुँचा। यह अवश्य है कि संस्कृत ग्रन्थों का पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में अनुवाद नहीं हुआ। इस प्रकार प्राचीन भारतीय परम्परा में आरम्भ में अंतर भाषायी अनुवाद ही प्रचुर मात्रा में मिलता है।

(iii) अन्तर प्रतीकात्मक अनुवाद

जब एक प्रतीक व्यवस्था का किसी अन्य प्रतीक व्यवस्था में अनुवाद किया जाए तो उसे अन्तरप्रतीकात्मक अनुवाद की संज्ञा देते हैं, यथा–हिन्दी उपन्यासों पर निर्मित चलचित्र अथवा पद्य पर आश्रित चित्रात्मक अभिव्यक्तियाँ। चित्रकार एम.एफ. हुसैन ने इस प्रकार के कई सराहनीय प्रयास किए हैं।

अनुवाद के सीमित स्वरूप के अन्तर्गत दो भाषाओं, दो बोलियों अथवा दो शैलियों के मध्य होने वाले अनुवाद को परिगणित किया जाता है। इसके दो आयाम हो सकते हैं–

(i) पाठ धर्मी अनुवाद

जब स्रोत भाषा के पाठ को केन्द्र में रखकर अनुवाद किया जाए अर्थात् जब मूल पाठ की संरचना व बुनावट को समझ कर अनुवाद किया जाए तो उसे पाठधर्मी अनुवाद कहते हैं।

(ii) प्रभाव धर्मी अनुवाद

साहित्य के अनुवाद के लिए पाठ धर्मी अनुवाद पूरी तरह से खरा नहीं उतरता क्योंकि साहित्य में मूल पाठ की संरचना व बुनावट की अपेक्षा प्रभाव महत्त्वपूर्ण होता है ऐसी स्थिति में अनुवादक पाठ की अर्थच्छटाओं की प्रभाविता को केन्द्र में रखकर अनुवाद करता है।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि सामान्यतः एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में रूपान्तरित करना अनुवाद कहलाता है। चूंकि किसी सभ्यता के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से दो भाषाएँ समान नहीं होती हैं उनका अपना-अपना संसार होता है वे भिन्न-भिन्न समाजों में जीती हैं अतः अनुवाद में मात्र भाषिक परिवर्तन नहीं होता वरन् उसमें सभ्यता का रूपान्तरण भी अपेक्षित है। यही नहीं अनुवादक को अर्थबोध, व्याकरण एवं स्पष्ट सम्प्रेषण का भी ध्यान रखना पड़ता है अतः अनुवादक का दायित्व दो मुखी होता है—रचनाकार के प्रति एवं पाठक के प्रति।

8.3 अनुवाद के वर्गीकरण के आधार

अनुवाद के प्रकारों का वर्गीकरण मुख्य रूप से तीन आधारों पर किया जाता है–

- माध्यम
- प्रक्रिया
- पाठ

माध्यम

अनुवाद का माध्यम क्या है? इस आधार पर अनुवाद के कई प्रकार मिलते हैं, जैसे–(क) प्रतीक (ख) भाषा (ग) लेखन।

(i) **प्रतीक**–एक प्रतीक व्यवस्था में प्राप्त सामग्री का दूसरी प्रतीक व्यवस्था में अन्तरण ही अनुवाद कहलाता है। यदि अनुवाद एक भाषान्तर्गत प्रतीक व्यवस्था से किसी अन्य के मध्य हो तो इसे **अन्तःभाषिक** कहते हैं, जैसे–शिवानी जी की कहानी पर की गई कविता। यदि अनुवाद एक भाषा से दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था के बीच हो तो उसे **अन्तरभाषिक** अनुवाद कहते हैं, यथा–शिवानी जी की कहानी का अंग्रेजी में अनुवाद। कभी-कभी दो भिन्न प्रतीक व्यवस्थाओं (एक भाषिक और दूसरा भाषेतर) के मध्य भी अनुवाद मिलता है, जिसे अन्तर प्रतीकात्मक अनुवाद की संज्ञा देते हैं, जैसे–शिवानी जी की कहानी पर यदि फिल्म बनाई जाए।

(ii) **भाषा**–भाषा के विविध रूप एवं साहित्य की विविध विधाओं के आधार पर भी अनुवाद के भेद किए जाते हैं। इस प्रकार लिखित एवं मौखिक भाषा के आधार पर उपादान सापेक्ष तथा काव्य, गद्य आदि के आधार पर रूप सापेक्ष प्रकारों की चर्चा की जाती है। इनके भी दो-दो उपवर्ग किए जाते हैं–पाठ अनुवाद और आशु अनुवाद तथा पद्यानुवाद एवं गद्यानुवाद।

(iii) **लेखन**–दो लिपियों के बीच अथवा उच्चारण और लिपि के बीच किए गए अनुवाद के आधार पर इसके दो उपवर्ग मिलते हैं–लिप्यंकन और लिप्यन्तरण। जब स्रोत भाषा पाठ के उच्चारण के आधार पर उसको लिखा जाए तो यह 'लिप्यंकन' कहलाता है और जब स्रोत भाषा लिपि के स्थान पर लक्ष्य भाषा लिपि में लिखा जाये तो इसे 'लिप्यन्तरण' संज्ञा से अभिभूत करते हैं, यथा–हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी में लिखित 'अनुवाद' को अंग्रेजी की लिपि रोमन में Anuwad लिखना।

प्रक्रिया

प्रक्रिया के आधार पर दो प्रकार के अनुवाद की चर्चा की जाती है–(क) पाठ धर्मी (ख) प्रभाव धर्मी। जो अनुवाद पाठ पर केन्द्रित हो उसे पाठ धर्मी कहते हैं। वस्तुतः 'पाठ' अर्थ और अभिव्यक्ति का समन्वित रूप होता है। कुछ अनुवाद कार्यों में

पाठ के अर्थ पक्ष की प्रधानता तो कुछ अन्य में अभिव्यक्ति पक्ष की प्रधानता मिलती है। इस दृष्टि से दो भेद किए जाते हैं–अर्थ सापेक्ष और अभिव्यक्ति सापेक्ष। कोई भी अभिव्यक्ति जहाँ एक ओर रचना से जुड़ी होती है तो दूसरी ओर भाषा व्यवस्था से। इस आधार पर अभिव्यक्ति सापेक्ष के दो वर्ग किए जाते हैं–रचना और व्यवस्था। जहाँ पूर्ण अनुवाद एवं आंशिक अनुवाद रचना सापेक्ष के उपभेद हैं वहाँ समग्र अनुवाद और परिसीमित अनुवाद व्यवस्था सापेक्ष के भेद जाने जाते हैं।

पाठ

पाठ के आधार पर पाठ के अर्थ से सम्बन्धित अनुवाद चार प्रकार का हो सकता है।

(क) शब्द प्रति शब्द अनुवाद

(ख) शाब्दिक अनुवाद

(ग) भावानुवाद

(घ) छायानुवाद

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि माध्यम, प्रक्रिया व पाठ के आधार पर अनुवाद के अनेक प्रकार होते हैं।

8.4 अनुवाद कला, शिल्प या विज्ञान

पूर्व चर्चा से स्पष्ट है कि अनुवाद शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। अनुवाद अर्थात् 'पहले कहे हुए को फिर से कहना'। इस कार्य को करने के लिए अनुवादक स्रोत भाषा पाठ सामग्री को समतुल्य लक्ष्य भाषा पाठ द्वारा प्रतिस्थापित करता है अथवा कह सकते हैं कि स्रोत भाषा के पाठ को लक्ष्य भाषा में अन्तरित करना अनुवाद है। प्रश्न उठता है कि क्या यह विज्ञान है, कला अथवा शिल्प?

विज्ञान शब्द के दो निर्मायक अंश है वि+ज्ञान अर्थात् किसी वस्तु अथवा विषय का विशिष्ट ज्ञान। वैज्ञानिक अध्ययन की अपनी कुछ अनिवार्यताएं होती हैं–वस्तुनिष्ठता, क्रमबद्धता, सुनिश्चितता और लघुता। चूंकि अनुवाद कार्य का सम्बन्ध भाषाओं से है और कार्य करने वाला मानव है इसलिए हम इससे यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि यह उपरोक्त विशेषताओं पर पूर्णतः खरा उतरे। भाषा परिवर्तनशील है और मानव

सीमा तक कला और कतिपय तत्वों की दृष्टि से शिल्प कहा जा सकता है।

8.5 अनुवाद प्रक्रिया

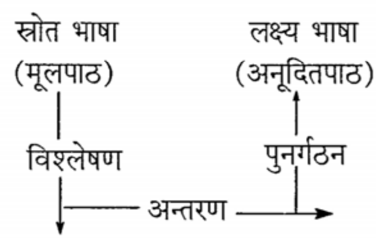
अनुवाद प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु है लक्ष्य भाषा में मूलभाषा पाठ के अनुवाद पर्याय को प्रस्तुत करना। यह प्रक्रिया एक दिशिक होती है-मूलभाषा से लक्ष्य भाषा में पाश्चात्य जगत में नाइडा एवं न्यूमार्क नामक दो विद्वानों ने अनुवाद प्रक्रिया पर गम्भीर चिन्तन किया है। यहाँ उनके सिद्धान्त का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है–

(क) नाइडा द्वारा प्रस्तावित प्रारूप

नाइडा के मतानुसार अनुवाद के तीन चरण होते हैं–

- विश्लेषण
- अंतरण
- पुनर्गठन

इन चरणों या सोपानों को नाइडा ने निम्नारेख द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया–



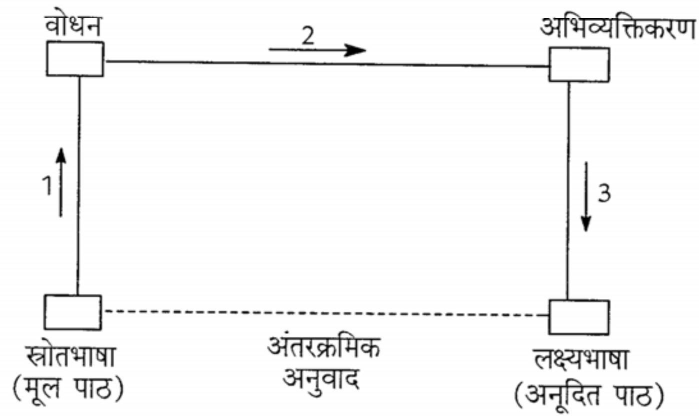
आरेख-2

स्पष्ट है कि अनुवादक सर्वप्रथम मूलपाठ को भलीभाँति पढ़कर उसे आत्मसात कर, उसका विश्लेषण करता है, वह पाठ की आन्तरिक व बाह्य दोनों संरचनाओं पर ध्यान देता है। विभिन्न अर्थच्छटाओं को पकड़ने की कोशिश करता है तत्पश्चात पाठ का अन्तरण लक्ष्य भाषा में करता है। तात्पर्य यह है कि अनुवादक अभिव्यक्ति के स्तर पर पाठ का पुनर्विन्यास करता है। तीसरा चरण पुनर्गठन का माना गया है। अनुवादक

लक्ष्य भाषा में अनूदित पाठ का निर्माण, मूल रचना के संदेश को ध्यान में रखकर यथावत करता है। इस प्रकार इन तीन चरणों से गुजर कर ही अनुवाद कार्य पूर्ण होता है।

(ख) न्यूमार्क द्वारा प्रस्तावित प्रारूप

न्यूमार्क अपने चिन्तन में यद्यपि नाइडा के समान ही कुछ चरणों की चर्चा करते हैं तथापि इनका प्रारूप चिन्तन के स्तर पर अधिक व्यापक है। इसे निम्नलिखित आरेख के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है—



आरेख-3

नाइडा एवं न्यूमार्क के आरेखों की तुलना इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि दोनों की अनुवाद प्रक्रिया सम्बन्धी धारणा में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। न्यूमार्क की दृष्टि आधुनिक तथा वैविध्यपूर्ण भाषा भेदों के अनुवाद कार्य की समस्याओं से प्रभावित है अतः वे बोधन तथा अभिव्यक्ति के सोपानों की कल्पना करते हैं। ये मूलपाठ को लक्ष्य भाषा पाठ से दो स्तरों पर जोड़ते हैं। पहला सम्बन्ध (जो खण्डित रेखा द्वारा दर्शाया गया है) शब्द प्रति शब्द अनुवाद पर आधारित है। यह उपयुक्त प्रक्रिया नहीं है।

अनुवाद का दूसरा रास्ता मूल पाठ की समझ और व्याख्या से लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्ति की दिशा की ओर जाता है। बोधन के पश्चात अनुवादक संदेश का पुनर्गठन और पुनःसृजन करता है। ध्यातव्य है कि प्रत्येक भाषा की संरचना और बुनावट ही नहीं अपितु व्यवहार का तरीका भी उसका अपना होता है। अनुवादक का उद्देश्य संदेश को यथा सम्भव सुरक्षित रखते हुए उसे एक भाषा से दूसरी भाषा की यात्रा करवाना है।

(ग) भूमिका समस्या प्रारूप

इन दो पाश्चात्य प्रारूपों के स्थान पर इधर कुछ वर्षों से डॉ. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव एवं डॉ. के.के. गोस्वामी द्वारा एक नवीन प्रारूप दिया गया। इसे निम्नारेख द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

(भाषिक प्रतीक)

संकेतक 1 → संकेतार्थ 1 → (संदेश ← संकेतार्थ 2) ← संकेतक 2

भाषिक प्रतीक

आरेख-4

इनके मतानुसार अनुवादक को तीन प्रकार की भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं और तीन तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

अनुवाद की भूमिका	**प्रक्रिया**	**समस्याएँ**
मूलपाठ का पाठक	बोधन	अर्थग्रहण की समस्या
द्विभाषिक	अंतरण	अर्थान्तरण की समस्या
अनूदित पाठ का रचयिता	सर्जन	अर्थ सम्प्रेषण की समस्या

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अनुवाद प्रक्रिया का संदर्भ अनुवादक को किस प्रकार मूल कृति के अर्थ बोधन, स्रोत भाषा में व्यक्त संदेश के लक्ष्यभाषा में अंतरण और अनूदित पाठ के रूप में अर्थ प्रस्तुतीकरण (सर्जन) के प्रति सजग और सक्षम

बनाता है।

8.6 अनुवाद में कुछ छोड़ना एवं जोड़ना

अनुवाद दो भिन्न भाषाओं के बीच होने वाली एक भाषिक प्रक्रिया है। इसमें मूल पाठ की सामग्री को दूसरी भाषा की समानार्थक (समतुल्य) पाठ्य सामग्री में प्रतिस्थापित किया जाता है। अनुवाद मूलानुवर्ती होने के बावजूद मूल की नकल नहीं होता बल्कि लक्ष्य भाषा में मूल की पुनर्प्रस्तुति होता है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि हर भाषा रूप और व्यवस्था की दृष्टि से विशिष्ट होती है उसकी अपनी अस्मिता अपना स्वरूप होता है। साथ ही प्रत्येक भाषा अपने चतुर्दिक व्याप्त जागतिक वास्तविकताओं का नामांकन भी भिन्न-भिन्न प्रकार से करती है और भाषा के सूक्ष्म अर्थों का प्रकटीकरण भी अलग-अलग ढंग से होता है। अनुवादक का कार्य मूल पाठ की रूप, व्यवस्था और अर्थ को लक्ष्य भाषा में रूपान्तरित करना है चूंकि भाषा संरचनाएं भिन्न-भिन्न होती हैं अतः प्रायः अनूदित पाठ में कुछ जोड़कर या कतिपय भावों को छोड़कर ही कार्य किया जा सकता है। संरचनागत भिन्नता के कारण कतिपय तत्त्वों के संयोजन व किञ्चिद के वियोजन की यह प्रक्रिया अनुवाद कार्य के साथ-साथ चलती रहती है, उदाहरणार्थ- अंग्रेजी के वाक्य My uncle is unwell का हिन्दी अनुवाद होगा 'मेरे चाचा अस्वस्थ हैं' ध्यान दें कि अंग्रेजी uncle के लिए हिन्दी में कई समतुल्य हैं (ताऊ, मौसा, मामा, फूफा) हिन्दी में 'चाचा' शब्द का प्रयोग उसके क्षेत्र को संकुचित करता है। सृजनात्मक साहित्य अथवा दार्शनिक साहित्य के अनुवाद में भी यही स्थिति दृष्टिगत होती है। मूल पाठ जैसा सौन्दर्य और लालित्य लाने के लिए, साहित्यकार के सृजनात्मक भावों को सफलतापूर्वक लक्ष्य भाषा तक पहुँचाने के लिए अनुवादक को जोड़ने-छोड़ने की छूट मिल जाती है। दर्शन साहित्य में सूक्ष्मताओं पर गूढ़ चिन्तन व मनन को प्रायः सूत्र रूप में कहा जाता है। मात्र शाब्दिक अनुवाद करने से अनुवाद हास्यास्पद बन जाता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि अनुवादक को मूल रचना में निहितार्थ को स्पष्ट करने और उसे स्रोतभाषा के अनुरूप ढालने की जरूरत होती है और ऐसा करते समय वह अपने विवेक का प्रयोग करके कुछ छोड़ता और जोड़ता है। स्पष्ट है कि छोड़ना और जोड़ना जहाँ भाषा की संरचनापरक आवश्यकता है वहीं सृजनात्मक, दर्शन

साहित्य के अनुवाद में भी पाद टिप्पणी जोड़ने की आवश्यकता होती है।

8.7 अच्छे अनुवादक के गुण

गुण वह आधारिक विशिष्टता होती है जो वस्तु या व्यक्ति की पहचान बनाती है। अतः अच्छे अनुवादक के गुण से तात्पर्य उन योग्यताओं और विशेषताओं से है जिनके बिना अनुवादक होना निरर्थक होता है। अच्छे अनुवादक में मुख्य रूप से चार गुणों का होना अनिवार्य है–

गहन सामाजिक सम्बद्धता

सर्जनात्मक प्रतिभा

स्रोत एवं लक्ष्य भाषासमाजों की पूर्ण जानकारी

जीवन का व्यापक और गहरा अनुभव

अनुवादक का कार्य किसी कृति को समाज तक पहुँचाना है। दूसरे समाज में हुए वैज्ञानिक आविष्कार, सांस्कृतिक चेतना की जानकारी कराना है। इस प्रकार अनुवादक अपनी सामाजिक जिम्मेदारी के प्रति जागरुक होता है। प्रत्येक अनुवादक मूल कृति का अपनी भाषा में पुनःसर्जन करता है। अपने भाषा ज्ञान, जीवन-अनुभव, लक्ष्य भाषा के भाषिक समाज की जानकारी के अनुरूप मूल रचना पाठ को पुनः रचता है अतः उसमें सर्जनात्मक प्रतिभा का धनी होना आवश्यक होता है। स्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा के सम्यक् ज्ञान के साथ-साथ भाषाभाषी समाज की पूर्ण जानकारी भी होनी चाहिए क्योंकि तभी वह मूल पाठ को पूर्णरूपेण दूसरी भाषा में सम्प्रेषित कर सकता है। अन्ततः अनुवादक को अनुभवशाली होना चाहिए। जीवन का अनुभव और लोक ज्ञान उसे कथ्य में निहित अर्थ को समझने में सहायता करता है। फलतः वह विभिन्न अर्थच्छटाओं को समझ श्रेष्ठ एवं सटीक अनुवाद कार्य करने में सफल होता है।

अनुवादक के गुणों के साथ-साथ विद्वान कुछ दायित्वों की चर्चा भी करते हैं। दायित्वहीनता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को मूल्यहीन बनाती है और विकास में बाधक होती है। अनुवादक के दायित्वों को मुख्यतः पाँच बिन्दुओं में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- मूलनिष्ठता का निर्वाह
- बोधगम्यता एवं सम्प्रेषणीयता
- निष्ठा एवं अभ्यास की निरंतरता
- विषय का सम्यक् ज्ञान तथा उसमें अभिरुचि

अनुवाद मूलपाठ से बंधा होता है। यह कृति पर आश्रित होता है अतः अनुवाद की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह मूल कृति का स्वरूप, सौन्दर्य और प्रभाव प्रेषित करने में कितना समर्थ हुआ है। अनूदित कार्य पाठक को सहजता से समझ आ जाए साथ ही अनूदित कृति में वे सभी परिप्रेक्ष्य उभर कर आएँ जिनसे मूल की रचना हुई है तो ऐसी रचना बोधगम्य कहलाती है। अनुवादक का दायित्व होता है कि उसमें अपने कार्य के प्रति लगन हो और वह निरन्तर अभ्यास करे। उसे विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और साथ ही अपने कार्य में रुचि भी होनी चाहिए। इनके अभाव में अनुवाद अनर्थकारी हो जाता है। विषय की अज्ञानता उसके कार्य के स्तर को गिरा देगी और निश्चित रूप से सम्भव है कि वह हास्यास्पद त्रुटियाँ कर बैठे।

आज के युग में अनुवादक का दायित्व और बढ़ गया है। व्यावसायिकता, भाषा अस्मिता पर हो रहे प्रहार, विषय विशेषीकरण की प्रवृत्ति एवं संचार माध्यमों का जीवन पर बढ़ता अतिक्रमण- ये सभी तथ्य अनुवादक के कार्य को और अधिक कठिन बना रहे हैं।

8.8 अनुवाद समीक्षा

अनुवाद समीक्षा का अभिप्राय मूलपाठ की तुलना में अनूदित पाठ के गुण दोष का विवेचन और अनूदित पाठ का लक्ष्यभाषा की साहित्यिक कृतियों के बीच मूल्यांकन से है। यह विवेचन अनुवाद सिद्धान्त की मान्यताओं के आधार पर किया जाता है। इसके द्वारा अनुवाद की स्तरीयता को जाँचा परखा जाता है। अनुवाद समीक्षा एक स्वतन्त्र विधा है और इस कार्य के लिए व्यक्ति का अनुवादक होना अनिवार्य नहीं है उसे अनुवाद मर्मज्ञ होना चाहिए। कतिपय विद्वानों के विचारानुसार यदि समीक्षक

अनुवादक भी हो तो वह और प्रभावशाली व अच्छा समीक्षक हो सकता है। अनुवाद समीक्षा में कथ्य के प्रभावशाली अनुवाद के साथ-साथ अनुवाद कौशल का भी मूल्यांकन होता है और समीक्षक यह जानने का प्रयास करता है कि मूल पाठ के विविध पक्षों का किस सीमा तक अंतरण हुआ है। प्रायः अनुवाद समीक्षा के दो रूपों की चर्चा की जाती है–**वर्णनात्मक** एवं **तुलनात्मक**। वर्णनात्मक में जहाँ मूल पाठ और अनूदित पाठ को साथ-साथ देखतें हुए उसका संरचना एवं शिल्प स्तर पर मूल्यांकन किया जाता है वहाँ तुलनात्मक में मूल पाठ के साथ एकाधिक अनूदित पाठों की समीक्षा होती है और समीक्षक विभिन्न अनूदित पाठों के बीच तुलना कर उनकी विशेषताओं और त्रुटियों का उल्लेख करता है।

स्पष्ट है कि समीक्षा का मुख्य लक्ष्य वस्तुनिष्ठ आलोचना और विश्लेषण है। यह अवश्य है कि समीक्षा पूर्वनिर्धारित मानदण्डों पर की जाती है और समीक्षक की दृष्टि मूलपाठ और अनूदित पाठ पर साथ-साथ निरन्तर बनी रहती है। सरल शब्दों में, किसी अनुवाद कार्य के गुण-दोषों का विवेचन ही समीक्षक का कार्य होता है।

8.9 अनुवाद मूल्यांकन

अनुवाद कार्य पूर्ण होने के पश्चात उसके पुनर्निरीक्षण व मूल्यांकन का समय आता है जहाँ पुनरीक्षक अनूदित पाठ की जाँच कर उसमें संशोधन परिवर्धन करता है वहाँ मूल्यांकन कर्ता अनूदित पाठ की उपयोगिता, गुणवत्ता, उपयुक्तता को आँकता है। इस प्रकार कोई अनूदित पाठ कितना सफल है उसकी क्या उपलब्धियाँ हैं और क्या कमियाँ हैं आदि का मूल्यांकन किया जाता है। अनुवाद मूल्यांकन के लिए कई पद्धतियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं जिनकी सहायता से अनुवाद की सफलता को मापा, जाँचा जा सकता है। विद्वानों ने प्रायः चार पद्धतियों की चर्चा की है–

(i) पुनरनुवाद/पुनः अनुवाद आधारित मूल्यांकन

इस पद्धति में अनूदित पाठ को अनुवादक के अतिरिक्त कोई अन्य पुनःस्रोत भाषा में अनूदित करता है और दोनों की तुलना के आधार पर त्रुटियों की पहचान, अनुवाद की सफलता आदि का मूल्यांकन किया जाता है, यथा–अपनी

माँग भर लो, > Please put vermillion in your parting > कृपया अपनी माँग में सिन्दूर भर लें।

(ii) अनुक्रिया आधारित मूल्यांकन

यह दो प्रकार से प्रयोग में लाई जाती है या तो अनूदित पाठ को विभिन्न पाठकों को पढ़ने हेतु देकर उनसे अनुक्रिया जानी जाती है अथवा सम्पूर्ण पाठ को कई खण्डों में विभाजित कर उस पर अलग-अलग पाठकों की अनुक्रिया प्राप्त की जाती है।

(iii) क्लोज परीक्षण

अनूदित पाठ से बीच-बीच से शब्द हटाकर पाठक से उन रिक्त स्थानों की शब्द पूर्ति करवायी जाती है। सही अनुमानों की जितनी अधिक संख्या होगी अनुवाद उतना अच्छा माना जाता है।

(iv) वाचन परीक्षण

यह परीक्षण तीन प्रकार से होता है–

(क) तीन चार लोग अनूदित पाठ का वाचन करते हैं और देखा जाता है कि वे कहाँ अटकते या रुकते हैं। इससे अनुवाद की सहजता का पता चलता है।

(ख) किसी एक पाठक को अनूदित पाठ पढ़वा कर उससे कहा जाता है कि उसका निहितार्थ अन्य व्यक्तियों को समझाए। वह जितनी अधिक सूचनाएँ पहुँचा पाएगा अनुवाद उतना सफल माना जाएगा।

(ग) अनुवाद का पाठन स्वयं ऊँचे स्वर में किया जाए। इस पाठन से कई त्रुटियाँ स्पष्ट हो जाएंगी।

इन सभी पद्धतियों में कोई न कोई कमी अवश्य मिलती है। अच्छे अनुवाद का मूल्यांकन मूलपाठ को ध्यान में रखे बिना करना उचित नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में, देखा जाए तो मूलनिष्ठता, पठनीयता, बोधगम्यता और प्रयोजनसिद्धि अनुवाद मूल्यांकन के मुख्य आयाम हैं।

8.10 अनुवाद पुनरीक्षण

पुनरीक्षण अनुवाद की जाँच और सुधार की प्रक्रिया है जो अनुवाद कार्य पूर्ण हो जाने के उपरान्त की जाती है। अनुवाद एक व्यवहारिक कार्य है अतः इसमें दोष का रह जाना स्वाभाविक ही है। अनुवादक का उद्देश्य स्रोत भाषा द्वारा प्रेषित कथ्य (संदेश) को लक्ष्य भाषा में प्रतिस्थापित करना है इस कार्य की समाप्ति के बात यह जाँच की जाती है कि कहीं दोष तो नहीं रह गया। अनुवादक अपने उद्देश्य में सफल हुआ कि नहीं आदि। अंग्रेजी में पुनरीक्षण को `vetting' की संज्ञा देते हैं और जो व्यक्ति यह कार्य सम्पन्न करता है वह 'पुनरीक्षक' कहलाता है। पुनरीक्षक का कार्य अनुवाद को फिर से देखना, मूलपाठ से उसकी तुलना कर अपेक्षित संशोधन करना है। वह अनूदित पाठ की विभिन्न स्तरों और अलग-अलग पहलुओं से जाँच करता है और आवश्यक स्थलों पर सुधार करता है। यह कार्य एक प्रकार से अनुवाद को सँवारता और उसका संपादन करता है।

पुनरीक्षण की प्रक्रिया के विभिन्न पक्ष निम्नांकित हैं—

(i) मूल पाठ और अनुवाद को पढ़ना

पुनरीक्षक का प्रथम कार्य मूल पाठ और अनूदित पाठ को पूरी तरह से पढ़ना है। वह ध्यान देता है कि अनुवाद कहाँ तक अपने भावों को व्यक्त करने में सफल हुआ है। अनुवादक ने कहीं कुछ छोड़ तो नहीं दिया यदि छोड़ा या जोड़ा है तो उसका क्या कारण है? क्या अनुवादक का निर्णय उचित है? इत्यादि।

(ii) मूलपाठ एवं अनूदित पाठ की तुलना

तुलना के अधार पर पुनरीक्षक यह जानने का प्रयास करता है कि कहीं मूल एवं अनूदित पाठ का आशय और निहितार्थ भिन्न-भिन्न तो नहीं है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मूलपाठ का कुछ अर्थ हो और अनूदित कुछ और ध्वनित कर रहा हो।

(iii) कथ्यगत त्रुटियों का सुधार

पुनरीक्षक कथ्यगत अशुद्धियों को दूर करने का प्रयास करता है। उसका यह प्रयास होता है कि जहाँ कहीं भी भूल हो उसे दूर कर अनूदित पाठ को मूल पाठ

के निकटतम ले जाए।

(iv) भाषागत अशुद्धियों का सुधार

भाषा कथ्य के अनुरूप है या नहीं तथा विषय से सम्बन्धित शब्दावली का प्रयोग किया गया है अथवा नहीं आदि बिन्दुओं पर पुनरीक्षक का ध्यान स्थिर रहता है। वैज्ञानिक एवं सूचनापरक पाठ की शब्दावली के साथ-साथ भाषा भी निश्चित होती है। वाक्य विन्यास का निश्चित ढाँचा होता है। इन सब अशुद्धियों को ढूँढ़ कर वह अपेक्षित संशोधन और सुधार करता है। साथ ही देखता है कि भाषा कथ्य के स्वभाव के अनुकूल है या नहीं।

(v) शैलीगत सुधार

अनुवाद में विषयानुसार शैली का प्रयोग हुआ है या नहीं इसकी जाँच करना भी पुनरीक्षक का कार्य है। अनूदित सामग्री का पाठक कौन सा वर्ग है उन लोगों की अपेक्षाओं के अनुरूप अनुवाद में सुधार और संशोधन किया जाता है।

(vi) अनूदित पाठ की लक्ष्यभाषा संस्कृति की दृष्टि से जाँच

प्रत्येक भाषा अपनी संस्कृति से आबद्ध रहती है। जिस समाज और संस्कृति को भाषा अभिव्यक्त करती है उस समाज और संस्कृति का वहन भी करती है। पुनरीक्षक का उत्तरदायित्व होता है कि वह स्रोत भाषा की संस्कृति से पूर्णतः परिचित हो क्योंकि तभी वह त्रुटियों को दूर कर सकता है।

(vii) फार्मेट संपादन

प्रत्येक पाठ सामग्री का एक बाह्य स्वरूप होता है जिसमें पाठ के विभिन्न अध्यायों/अनुच्छेदों के वर्गीकरण, पैराग्राफ विभाजन, अलग-अलग खंडों के लिए भिन्न संख्या अथवा वर्ण का प्रयोग आदि के निश्चित स्थान की जाँच पुनरीक्षक द्वारा की जाती है तथा आवश्यकतानुरूप अपेक्षित सुधार किया जाता है।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि अनुवाद कार्य समाप्त हो जाने के उपरान्त उसकी जाँच और संशोधन का कार्य पुनरीक्षक का होता है जो अपनी क्षमतानुसार अनुवाद को संवारता और अधिक सुघड़ बनाता है।

8.11 अनुवाद की समस्याएँ

अनुवाद कार्य के समय अनुवादक के समक्ष कई समस्याएँ आती हैं जो उसकी सीमाओं का निर्माण करती हैं। प्रायः विद्वान निम्न प्रकार की सीमाओं की चर्चा करते हैं।

(i) स्त्रोत भाषा एवं लक्ष्य भाषा संरचना सम्बन्धी

प्रत्येक भाषा दूसरे से भिन्न होती है। उसकी अपनी एक व्यवस्था अस्तित्त्व और संरचना होती है। अतः अनुवादक को दोनों भाषाओं की प्रकृति को ध्यान में रखकर उनमें प्राप्त समानताओं और विषमताओं को समझकर अपना कार्य करना होता है। स्त्रोत एवं लक्ष्य भाषा दोनों की प्रकृति में मिलने वाली भिन्नताएं समस्या उत्पन्न करती हैं यथा–

हिन्दी–अच्छा लड़का विद्यालय जाता है।

अंग्रेजी–A good boy goes to schoot.

यहाँ दोनों भाषाओं के पदक्रम में अन्तर है। जहाँ अंग्रेजी में S V O क्रम है, वहाँ हिन्दी में SOV क्रम रहता है।

हिन्दी–अच्छी लड़की जाती है।

अंग्रेजी–A good girl goes.

हिन्दी में कर्ता और विशेषण में तथा कर्ता-क्रिया में अन्विति है जबकि अंग्रेजी में कोई परिवर्तन नहीं होता है। स्पष्ट है कि भाषा की प्रकृति का ज्ञान अनुवादक की अनिवार्यता है।

(ii) सामाजिक एवं सांस्कृतिक

प्रत्येक भाषा अपने समाज और संस्कृति से घनिष्ठतः सम्पृक्त होती है। जहाँ वह एक तरफ समाज में सीखी व बोली जाती है वहाँ दूसरी तरफ संस्कृति की संवाहक होती है। हर भाषा में अपनी भाषिक समुदाय की संस्कृति को अभिव्यक्त करने की क्षमता होती है। हमारा खान-पान, वेशभूषा, मान्यताएँ, विश्वास, कुरीतियाँ, रीति रिवाज सभी भाषा द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। ऐसी सांस्कृतिक परम्पराओं का निर्वाह करने वाले शब्दों का यदि शाब्दिक अनुवाद किया जाए

तो इनका अर्थ नष्ट हो जाता है जो इनके सांस्कृतिक संदर्भ से सम्बद्ध होता है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अनुवाद की ये सीमाएँ न केवल भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की भाषाओं में ही दृष्टिगत होती हैं, बल्कि एक ही राष्ट्र की अलग-अलग भाषाओं में भी मुखर होती हैं जिनके कारण अनुवादक को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। हिन्दी भाषाभाषी समाज के रीति रिवाजों को अभिव्यक्त करने वाले शब्द जैसे–कन्यादान, जनेऊ, मंगलसूत्र आदि शब्दों के लिए समतुल्य ढूंढ़ना कठिन ही नहीं असम्भव है। प्रायः इनका स्पष्टीकरण पाद टिप्पणी के माध्यम से किया जाता है।

(iii) क्षेत्रीयता परक

भारत एक बहुभाषाभाषी देश है आज जिसकी सभी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। कई भाषाओं की भिन्न-भिन्न बोलियाँ भी प्रचलित हैं ऐसी स्थिति में क्षेत्र, राष्ट्र, जातीयता की कई सीमाएँ मिलती हैं। इन भाषाओं और बोलियों में प्राप्त ध्वनि, शब्द, रूप रचना व वाक्य रचना सम्बन्धी अन्तर समस्याएँ उत्पन्न करते हैं, यथा–

'सड़ना' शब्द पंजाबी में जलना का परिचायक है हिन्दी में 'खराब होना; सड़-गल जाना'।

स्पष्ट है कि भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मूल पाठ को यथावत् लक्ष्य पाठ में अनूदित होने नहीं देती है। अनुवादक अपनी सूझबूझ, विवेकशीलता, विषय बोध, अनुभव के आधार पर इन कठिनाइयों का सामना करते हुए यथासम्भव स्रोत भाषा की सम्पूर्ण अर्थच्छटाओं को लक्ष्य कर भाषा में अन्तरित करने का प्रयास करता है। अलग-अलग भाषाओं की वैचारिकता, उनकी सोच का अनुवाद समस्याप्रद होता है।

8.12 हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद की समस्याएँ

एक अनुवादक का उद्देश्य स्रोत भाषा के संदेश को लक्ष्य भाषा में सुन्दर व प्रभावशाली ढंग से पहुँचाना होता है और चूंकि प्रत्येक भाषा दूसरी भाषा से ध्वनि, व्याकरण, अर्थ एवं लिपि स्तर पर भिन्नता रखती है अतः अनुवादक के समक्ष कई समस्याएँ आती हैं। यद्यपि अंग्रेजी व हिन्दी भारोपीय परिवार की ही भाषाएँ हैं तथापि इनकी संरचना में अनेक असमानताएँ मिलती हैं जो अनुवाद कार्य में समस्या उत्पन्न

करती हैं।

1. अंग्रेजी में विशेषक का प्रयोग संज्ञा से पूर्व एवं पर दोनों स्थानों में किया जाता है जबकि हिन्दी में विशेषक संज्ञा के पहले ही आते हैं तथा बहुत कम स्थानों पर संज्ञा के बाद प्रयोग किए जाते हैं। अतः अंग्रेजी के जिन पदबंधों में विशेषक बाद में प्रयोग किए गए हैं उन्हें हिन्दी में पहले लाना पड़ता है, जैसे–

the house opposite the garden

बगीचे के सामने वाला मकान

3. हिन्दी के सर्वनाम लिंग निरपेक्ष होते हैं उन पर लिंग का प्रभाव नहीं पड़ता है, जैसे-हिन्दी सर्वनाम 'वह' स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनों हो सकता है जबकि अंग्रेजी में इसके भिन्न भिन्न रूप मिलते हैं–he और she

वह कौन है? < who is she ? / who is he ?

3. हिन्दी में प्रेरणार्थक क्रियाएँ शब्दों में आन्तरिक परिवर्तन करके बनाई जाती हैं–

पढ़ना, पढ़ाना, पढ़वाना

बनना, बनाना, बनवाना

खाना, खिलाना, खिलवाना

अंग्रेजी में have, cause, get make आदि कोशीय शब्दों की सहायता से प्रेरणार्थक अर्थ अभिव्यक्त किया जाता है, जैसे–

उसने हमें इन्तजार करवाया।

she kept us waiting

4. प्रायः अंग्रेजी के क्रिया-विशेषण एवं विशेषण शब्दों के अनुवाद में समस्या आती है। अंग्रेजी में विशेषण शब्दों में -ly प्रत्यय लगाकर क्रिया-विशेषण निर्माण की प्रक्रिया प्रचलित है, जैसे–broad से broadly जबकि हिन्दी में

क्रिया विशेषण या तो स्वतन्त्र रूप से आते हैं (जल्दी, तेज, धीरे) या फिर संज्ञा शब्द के सहयोग से बनाए जाते हैं (सौभाग्य से, नम्रता से)।

5. अंग्रेजी में अभावात्मक विशेषणों की सिद्धि `un'-और `in'- उपसर्गों द्वारा होती है, जैसे–unwanted, impossible । यद्यपि हिन्दी में भी यह कार्य संस्कृत से आगत 'अ'- और 'अन'- प्रत्ययों द्वारा सम्पन्न होता है तथापि सदैव ऐसा करना उचित नहीं होता।

6. अंग्रेजी में अनेक क्रिया-पद ऐसे हैं जिनका यथावत अनुवाद करना कठिन हो जाता है, जैसे–`He speaks well' वाक्य का 'वह अच्छा वक्ता है' यह अनुवाद होगा न कि 'वह अच्छा बोलता है'। आज कल यद्यपि द्वितीय अनुवाद भी प्रचलन में है।

7. कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य के अनुवाद में प्रायः समस्या आती है क्योंकि हिन्दी में कर्मवाच्य का अधिक प्रयोग नहीं होता, उदाहरणार्थ–I have been upset का अनुवाद 'मैं परेशान हो गया हूँ' होगा न कि 'मुझे परेशान कर दिया गया है'।

8. हिन्दी में प्रत्यक्ष कथन एवं परोक्ष कथन में भिन्नता नहीं मिलती जबकि अंग्रेजी में इसका बहुत प्रयोग होता है, जैसे–Ram said to sita, He is going to Bombay (प्रत्यक्ष कथन)

   Ram told Sita that he was going to Bombay हिन्दी में अनुवाद करते समय सावधानी की आवश्यकता होती है अन्यथा पाठक सही अर्थ नहीं समझ पाता है।

9. इन समस्याओं के साथ-साथ अनुवादक को भिन्न वाक्यों के अनुवाद में भी समस्या आती है, जैसे–This painting is made by Ravi Verma, who was awell known poet and ruler of a large kingdom, which was later on conquered by Britishers.

   चूंकि यह वाक्य हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है अतः अनुवादक को सावधान रहना पड़ेगा। और इसे कई वाक्यों में तोड़कर अनुवाद करना उचित होगा, जैसे–

'यह चित्र श्री रवि वर्मा द्वारा बनाया गया है। श्री रवि वर्मा प्रसिद्ध कवि और बृहद् साम्राज्य के शासक थे। बाद में इनके साम्राज्य को ब्रिटिश लोगों ने जीत लिया था।'

10. किसी भाषा के मुहावरे व कहावतें अनुवादक के समक्ष सर्वाधिक कठिनाई उत्पन्न करते हैं, जैसे–

`Please feel free to have any thing अथवा many a little makes a mickle आदि अंग्रेजी मुहावरों का अनुवाद करते समय वाच्यार्थ देना ही उचित होता है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि अंग्रेजी-हिन्दी अनुवाद करते समय अनुवादक के समक्ष अनेक समस्याएँ आती हैं और उसे बड़ी सावधानी से कार्य करना पड़ता है।

8.13 मुहावरों और लोकोक्तियों का अनुवाद

किसी भाषा के मुहावरे और लोकोक्तियाँ ऐसी भाषिक रचनाएँ होती हैं जिनका विशिष्ट अर्थ होता है। इन रचनाओं में प्रयुक्त शब्द सदैव अपने सान्दर्भिक अर्थ को प्रकट नहीं करते वरन् ये सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों, विश्वास एवं सोचने के ढंग को व्यक्त करते हैं। इन्हें भाषा का प्राण भी माना जाता है। सामान्य भाषा अभिधार्थ प्रकट करती हैं जबकि मुहावरे-लोकोक्तियों में गहराई, प्रभाव उद्भूत करने की क्षमता और साहित्यिक सौन्दर्य का पुट होता है। इसीलिए इन्हें परिभाषित करते हुए कहा गया है कि–"जो वाक्यांश सामान्य अर्थ का बोध न कराकर, किसी विलक्षण अर्थ की प्रतीति कराए, उसे मुहावरा कहते हैं।" स्पष्ट है कि मुहावरे व लोकोक्तियाँ भाषा की विशिष्ट व्यवस्था के परिणाम होते हैं और हर भाषा के अपने होते हैं साथ ही किसी भाषा की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि लोक जीवन, दार्शनिक विचार धारा आदि से घनिष्ठतः सम्बन्धित होते हैं। यही कारण है कि एक भाषा के मुहावरे और लोकोक्तियों को दूसरी भाषा में अनूदित करना समस्या प्रद होता है। मुहावरेदार अथवा लोकोक्तियुक्त कथ्य का अनुवाद करने के लिए सर्वप्रथम अनुवादक उनके द्वारा व्यंजित अर्थ का ग्रहण करता है क्योंकि ये अपने शाब्दिक अर्थ के वाहक नहीं होते अतः व्यंजित अर्थ को पकड़ उसका अनुवाद आवश्यक होता है। अर्थ ग्रहण के पश्चात दूसरा चरण समकक्ष प्रयोग की तलाश होता है। अनुवादक समतुल्यों की खोज में लग जाता है।

मुहावरे प्रायः चित्रात्मक होते हैं, जैसे–'उसके हाथों के तोते उड़ गए' कहने से

भावना का पूरा चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। चित्रात्मकता यद्यपि अर्थ बोध में सहायता देती है तथापि इसका अच्छा अनुवाद वही कर सकता है जो निहितार्थ को भलीभाँति समझता हो। निहितार्थ का अपूर्ण ज्ञान अपूर्ण अनुवाद को जन्म देता है। इसी प्रकार–नौ दो ग्यारह, किताबी कीड़ा आदि मुहावरों का अर्थ उनके शब्दों द्वारा नहीं बाहर जाकर खोजना पड़ता है फलतः ऐसी स्थितियाँ समस्या उत्पन्न करती हैं। वास्तव में मुहावरे की शब्द योजना उसके अर्थ में चमत्कार उत्पन्न करती है और अनुवादक को उसका ध्यान रख अपना कार्य सम्पन्न करना चाहिए क्योंकि शब्दों के लेशमात्र हेर-फेर से मुहावरों का गुण नष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि मुहावरे और लोकोक्तियों के अनुवाद में कई समस्याएँ आती हैं। समतुल्य इकाइयों द्वारा प्रतिस्थापन की प्रक्रिया में मुख्यतः रुकावट आती है क्योंकि सूक्ष्म धरातल पर से सांस्कृतिक, सामाजिक, मूल्यगत और अनुभवगत वैविध्य प्रकट करती हैं।

8.14 अनुवाद का महत्त्व

भूमण्डलीकरण के इस युग में व्यवसाय के क्षेत्र में अनुवाद का महत्त्व बहुत ही बढ़ गया है। आर्थिक उदारीकरण के कारण राष्ट्रों की दूसरे देशों से खरीद फरोख्त की नीतियाँ बदल रही हैं जिसके फलस्वरूप अन्तर्भाषायी क्षेत्रों में व्यापार बढ़ रहा है ऐसी स्थिति में अनुवाद की उपादेयता व्यापक होना स्वाभाविक ही है। यही नहीं तकनीकी और औद्योगिक सूचनाएँ एवं नवीन आविष्कारों की जानकारी को प्राप्त करने और उन्हें प्रयोग में लाने की दृष्टि से भी अनुवाद उपयोगी सिद्ध हुआ है। अनुवाद की ही सहायता से आज जर्मनी में हुई खोज, जो कि जर्मन भाषा में हुई, कि जानकारी समस्त विश्व में अंग्रेजी में उपलब्ध है। इसी कारण आज बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थान शीघ्र अनुवाद करवाने की व्यवस्था रखते हैं। लखनऊ में स्थित हिन्दुस्तान एरोनॉटिक लिमिटेड में रूसी भाषा के कई ज्ञाता हैं जो महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों और आधुनिक जानकारी को अंग्रेजी में अनूदित करते हैं। साथ ही अनेक संस्थान व कम्पनियाँ अपने माल को व्यापक स्तर तक पहुँचाने के लिए कई भाषाओं में प्रचार साहित्य तैयार करवाती हैं। भारत जैसे बहुभाषाभाषी देश में तो राष्ट्रीय स्तर पर ही व्यवसाय के क्षेत्र में अनुवाद की महत्ता दृष्टिगत होती है।

पर्यटन आधुनिक युग का उद्योग है जिसके क्षेत्र में अनुवाद का अत्यधिक महत्त्व है। पर्यटन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर मिलता है। यात्रा, आवास,

मनोरंजन, दर्शनीय स्थान सम्बन्धी सूचना प्रचार पत्र में प्रकाशित होती है जिससे देश विदेश के यात्रियों को असुविधा न हो। यही नहीं गाइड आदि भी अनुवाद का सहारा ले मौखिक रूप से यात्रियों की सहायता करते हैं। आज उद्योग एवं व्यवसाय के क्षेत्र में अनुवाद की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है।

8.15 व्यतिरेकी विश्लेषण एवं अनुवाद

अनुवाद में दो भाषाओं की तुलना करते हुए उनके व्यतिरेक को पहचानना होता है। इसके पश्चात अनुवादक लक्ष्य भाषा की संरचना के अनुकूल प्रस्तुति करता है। अनुवाद की दृष्टि से भाषा के सार्थक तत्त्वों—रूप, शब्द, वाक्य सभी का व्यतिरेकी विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता है। ध्यान रहे कि अनुवाद और व्यतिरेकी विश्लेषण दोनों का ही सम्बन्ध दो भाषाओं से होता है। जहाँ अनुवाद में स्रोत भाषा के कथन को लक्ष्य भाषा में अन्तरित करते हैं वहाँ व्यतिरेकी विश्लेषण में स्रोत भाषा की संरचना का लक्ष्य भाषा की संरचना से तुलनात्मक अध्ययन कर व्यतिरेक/विरोध के बिन्दु रेखांकित किए जाते हैं। यह विश्लेषण दो भाषाओं में प्राप्त संरचना संबंधी समानता के स्थान पर उन बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देता है जहाँ संरचना एक दूसरे से भिन्न होती है क्योंकि ये भिन्न एवं असमान तत्त्व ही अनुवाद कार्य की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार व्यतिरेकी विश्लेषण का उद्देश्य दो भाषाओं की समकक्ष संरचनाओं के बीच व्यतिरेक स्पष्ट करना होता है। किसी भी कथन या उसके अंश के अनुवादक के समक्ष एकाधिक विकल्प होते हैं जिनमें से अनुवादक उपयुक्तता के आधार पर किसी एक को चुनता है। स्रोत एवं लक्ष्य भाषा की संरचनागत विशिष्टता के कारण अनुवाद कार्य में कुछ न कुछ शाब्दिक, व्याकरणिक अथवा अर्थगत अन्तर आ सकता है। अनुवाद कार्य में आगत विकल्प चयन की इस प्रक्रिया में अप्रत्यक्ष रूप से व्यतिरेकी विश्लेषण सहायता देता है। दो भाषाओं के व्यतिरेकी विश्लेषण के ज्ञान से अनुवादक दोनों भाषाओं की संरचना अर्थात् उनकी व्याकरणिक व्यवस्थाओं, विशिष्ट अभिव्यक्तियों, सहप्रयोगों आदि से परिचित हो जाता है फलतः उसमें यह क्षमता विकसित हो जाती है कि वह अनुवाद में लक्ष्य भाषा के अनुरूप प्रयोग करे। उसके अनुवाद पर स्रोत भाषा का प्रभाव हावी नहीं होता और अनूदित सामग्री सहज एवं ग्राह्य होती है उदाहरणार्थ—हिन्दी में द्विरुक्त शब्दों का बहुत प्रयोग होता है, जैसे—'उसने घर का कोना-कोना छान मारा' इस वाक्य में प्रयुक्त 'कोना-कोना' का अंग्रेजी अनुवाद corner-corner न होकर, अंग्रेजी की प्रकृति के अनुरूप 'each and every corner' या 'all the corners' होगा। व्यतिरेकी

विश्लेषण से प्राप्त जानकारी ही अनुवादक को इस प्रकार की त्रुटियों से बचाती है। यही नहीं अनुवादक स्रोत एवं लक्ष्य भाषा के उन स्थलों से भी परिचित हो जाता है जहाँ मातृभाषा व्याघात या अन्य कारणों से गलती हो सकती है अतः वह पहले से ही सतर्क रहकर अनुवाद करता है, जैसे–हिन्दी के परसर्ग 'से' का अंग्रेजी में कई रूपों में अनुवाद किया जा सकता है 'from, for, since, to' इत्यादि। अंग्रेजी के ये परसर्ग भिन्न भिन्न नियमों से बंधे होते हैं। अनुवादक को इस प्रकार की जानकारी होने पर वह नियमों से परिचित होने के कारण त्रुटि नहीं करता है। इसीलिए व्यतिरेकी विश्लेषण को अनुवाद का आनुषांगिक साधन माना जाता है।

❊❊❊

9.0 कोश विज्ञान

9.1 प्रकृति एवं स्वरूप

सामान्यतः किसी भाषा में व्यवहृत शब्दों का व्यवस्थित रूप में किया गया संकलन या संग्रह कोश कहलाता है। कोश भाषिक भी हो सकते हैं और विभिन्न विषयों से सम्बन्धित भी। भाषिक के अन्तर्गत शब्दकोश, अभिव्यक्ति कोश, पर्यायकोश आदि की गणना की जाती है जबकि धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि विषयों से सम्बन्धित जानकारी विषय कोश में संकलित रहती है।

कोश निर्माण का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले विषय को कोश विज्ञान (lexicography) की संज्ञा दी जाती है। प्रसिद्ध भाषाविद् कत्रे के मतानुसार "कोश विज्ञान मुख्यतः भाषा के रूपिम अथवा अर्थवान रूपों के संग्रह और उनकी अर्थपूर्ण स्थितियों के सन्दर्भ में भाषावैज्ञानिक सामग्री में उनको क्रमबद्ध करने से संबंधित है। सामान्य बोलचाल में कह सकते हैं कि शब्दकोश में अकारादि क्रम से नियोजित शब्दांश या शब्द होते हैं और साथ ही उनके उन अर्थों की सूची दी जाती है जिसका वे विशेष परिस्थिति में बोध कराते हैं।" कृष्णास्वामी के मतानुसार 'the process of compiling dictionaries (is called lexicography). हर्टमैन के विचारानुसार `lexicography is theus concerned with the job of describing all or some of the words of one or more languages in terms of their chracteristic features, notably of their meaning.'

स्पष्ट है कि इस विज्ञान के अन्तर्गत उन सामान्य सिद्धान्तों का विवेचन एवं निर्धारण होता है जिनकी सहायता से किसी भाषा के कोशों का निर्माण होता है। अनेक विद्वानों ने कोश विज्ञान के साथ-साथ कोश कला (lexicology) नाम का भी उल्लेख किया है। वास्तव में यह भिन्नता सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष की है। कोश कला

कोश विज्ञान का व्यावहारिक रूप है। ज़गुस्ता के मतानुसार lexicology concentrates more on general properties and features... lexicography on individual units as the focus of interest."

कोश निर्माण की परम्परा पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में कोशों का निर्माण अत्यन्त प्राचीन काल में आरम्भ हो गया था। 'निघण्टु' वैदिक भाषा के प्रथम कोश माने जाते हैं ज़िनमें पर्यायवाचिता के आधार पर शब्दों को संग्रहित किया गया था। इसके उपरान्त संस्कृत लौकिक काल में भी अमरकोश, मेदिनी कोश तथा हलायुध कोश आदि के नामों का उल्लेख मिलता है।

पाश्चात्य परम्परा में कोश निर्माण के प्रथम प्रमाण ईसा पश्चात की आठवीं शताब्दी के प्राप्त होते हैं। इस कोश में लैटिन शब्दों के साथ उनके अंग्रेजी समतुल्यों का संग्रह किया गया। कई विद्वान इस कार्य को कोश नाम देने के पक्ष में नहीं हैं। अंग्रेजी का प्रथम कोश 1604 ईसवी में राबर्ट कोड्रे द्वारा निर्मित किया गया। आधुनिक काल में मुद्रण की कला की यान्त्रिक सुविधाओं के फलस्वरूप विभिन्न भाषाओं में निरन्तर कोश निर्माण बड़ी संख्या में हो रहा है। आज वरेण्य भाषाओं के अतिरिक्त भाषाओं के संरक्षण में लगे अनेक भाषाविद् संकटग्रस्त या मृतप्राय भाषाओं के कोश निर्माण में प्रयासरत हैं।

9.2 कोश के प्रकार

आरम्भ में कोश का सम्बन्ध भाषा कोश से ही माना गया किन्तु आज विविध आधारों पर कोशों की रचना हो रही है। भाषा के आधार पर तीन प्रकार के कोश प्राप्त होते हैं–

9.2.1 एक भाषी कोश monolingual dictionary

इस कोश में संग्रहित शब्द एवं उनके अर्थ समान भाषा में दिए जाते हैं। कह सकते हैं कि यह कोश किसी एक भाषा के शब्दों का वर्णक्रमानुसार संग्रह होता है जिसमें उसी भाषा में शब्दों के अर्थ भी दिए रहते हैं जैसे–हिन्दी शब्द सागर में हिन्दी शब्दों को हिन्दी में ही स्पष्ट किया गया है। हिन्दुस्तानी बुक डिपो से प्रकाशित राष्ट्र-भाषा कोश इसी वर्ग में आता है। इसकी एक प्रविष्टि उदाहरण स्वरूप देखें–

घाघ (स.पु.) गोंडे के एक चतुर मनुष्य का नाम। चतुर मनुष्य। अनुभवी मनुष्य। चालाक। सयाना। जादूगर, इन्द्रजाली। एक पक्षी।

एक अच्छे कोश में शब्द के विभिन्न अर्थों के साथ-साथ उसकी व्याकरणिक कोटि, शब्द का स्रोत तथा उसका प्रयोग भी दिया जाता है जैसे—अंग्रेजी की ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी। उदाहरणार्थ इसकी निम्न प्रविष्टि दृष्टव्य है—

extract[1]/Ik'straekt/verb [T] (formal) to take something out, especially with difficulty, 'I think this tooth will have to be extracted.'

extract[2]/ekstraekt/noun [c] a part of a book, piece of music, etc. that has often been specially chosen to show something: 'The newspaper published extracts from the controversial novel.'

ध्यान दें कि यहाँ शब्द के साथ कई अन्य जानकारियाँ भी दी गई हैं। इन्हें समझने के लिए कोश के आरम्भ में संकेत तालिकाएँ भी दी जाती हैं।

9.2.2 द्विभाषी कोश bilingual dictionary

जिस कोश में दो भाषाओं का प्रयोग किया जाए अर्थात् शब्द एक भाषा में तथा अर्थ दूसरी भाषा में दिए जाएं उन्हें द्विभाषी कोश कहते हैं अर्थात् इनमें एक भाषा के शब्दों के अर्थ, उच्चारण तथा प्रयोग सन्दर्भ दूसरी भाषा में दिए जाते हैं यथा—अंग्रेजी-हिन्दी,जर्मन-अंग्रेजी आदि चैम्बर्स अंग्रेजी-हिन्दी कोश की एक प्रविष्टि उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

enthyeme n. (rhet.) लुप्तावयव न्याय वाक्य; adj. enthymematical लुप्तावयव न्याय वाक्य संबंधी।

द्वितीय भाषा शिक्षण तथा अनुवाद में इन कोशों की विशेष उपयोगिता होती है क्योंकि इनमें स्रोत तथा लक्ष्य, दोनों भाषाओं के शब्दों के अर्थ तथा कभी-कभी प्रयोग समाहित रहते हैं। चैम्बर्स अंग्रेजी-हिन्दी कोश की एक प्रविष्टि उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

braw adj. उत्तम, उत्कृष्ट, सुवेशी; ad brawly उत्तम सुवेशित; m pl. braws सुन्दर वस्त्र, बढ़िया कपड़े।

9.2.3 बहुभाषी कोश multi lingual dictionary

इसमें एक ही अर्थ के वाचक एकाधिक भाषाओं के शब्द संकलित किए जाते हैं। ये कोश प्रायः किसी एक ही भाषा परिवार की विभिन्न भाषाओं को लेकर बनाए जाते हैं। भाषाओं के तुलनात्मक ऐतिहासिक अध्ययन में इनकी विशेष उपयोगिता होती है।

भाषा कोश के अतिरिक्त कोश के निम्नलिखित अन्य प्रकार भी किए जा सकते हैं–

(i) विविध विषयों से सम्बद्ध शब्द संग्रह/कोश

ज्ञान विज्ञान के विषयों की अपनी-अपनी पारिभाषिक शब्दावली होती है जो उस विषय की विशिष्ट प्रयुक्ति कही जा सकती है। साधारण कोश में इन विविध विषयों (इतिहास, भूगोल, वाणिज्य, विज्ञान आदि) के पारिभाषिक शब्दों को संग्रहित करना सम्भव नहीं होता। अतः विषय विशेष के पारिभाषिक कोशों का निर्माण किया जाता है जिनमें एक विषय से सम्बद्ध तकनीकी शब्दावली को संकलित कर उनका आशय उसी भाषा अथवा किसी अन्य भाषा में दिया जा सकता है।

(ii) परिभाषा कोश

जहाँ कोश के उपर्युक्त वर्णित प्रकार में विशिष्ट विषय के शब्दों का संग्रह होता है वहाँ परिभाषा कोश उन शब्दों की परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। ध्यान रहे ये विषय कोश की श्रेणी में होते हुए भी उनसे भिन्न होते हैं। विषय कोश का क्षेत्र विस्तृत होता है इनमें विषय से सम्बद्ध सिद्धान्तों अवधारणाओं आदि की जानकारी दी जाती है किन्तु परिभाषा कोश विषय की जानकारी नहीं बल्कि पारिभाषिक शब्दावली की अवधारणा और उसके अभिधेय की सूचना देता है।

(iii) विषय कोश

विषय कोश भाषिक तथा भाषा से इतर सन्दर्भों से भी जुड़ाव रखते हैं। इनके अन्तर्गत विषय विशेष की तकनीकी शब्दावली की विस्तृत जानकारी रहती है। कभी कभी कुछ तकनीकी शब्द एकाधिक भाषाओं में भिन्न-भिन्न अर्थों में व्यवहृत होते हैं विषय कोश इस प्रकार के शब्दों की विषयानुरूप व्याख्या प्रस्तुत करता है।

(iv) मुहावरा तथा लोकोक्ति कोश

जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि इस प्रकार के कोश में भाषा के अनिवार्य अंग मुहावरे तथा लोकोक्तियों का संग्रह किया जाता है। प्रायः इनमें मुहावरों के अर्थ के साथ-साथ उनके वाक्य प्रयोग भी दिए जाते हैं।

(v) थिसॉरस

यह एक लैटिन शब्द है जिसका अर्थ होता है 'कोशागार' या 'खजाना'।

अमरीका में इस शब्द का प्रयोग पर्याय तथा विपक्षीय कोश के अर्थ में भी होता है। इस कोश में एक शब्द के विकल्पों को रखा जाता है। विश्व प्रसिद्ध रॉजे थेसॉरस का उद्देश्य है–साहित्यिक अभिव्यक्ति को सहज तथा प्रभावी बनाने के लिए उपयुक्त शब्दों एवं मुहावरों का सुझाव। स्पष्ट है कि ये कोश लेखकों के लिए एक अत्यन्त उपयोगी साधन होता है।

(vi) उच्चारण कोश

जिन कोशों में अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से शब्दों का सही उच्चारण दिया जाता है उन्हें उच्चारण कोश कहते हैं।

(vii) साहित्य कोश

एक या एकाधिक भाषाओं के साहित्य से सम्बद्ध जानकारी प्रस्तुत करने वाला कोश साहित्य कोश कहलाता है। यह साहित्यकारों, साहित्यिक धाराओं अथवा रचनाओं किसी भी आधार पर निर्मित किया जा सकता है।

(viii) विश्व कोश

ज्ञान के अनेक विषयों–धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, इतिहास, भूगोल, ज्ञान विज्ञान आदि से सम्बद्ध जानकारी इसमें दी जाती है जिसे विषय के अधिकारी विद्वानों से लिखवाया जाता है। इसकी प्रविष्टियाँ वर्णक्रम में रखी जाती है। विश्वकोश की हर प्रविष्टि के साथ उससे सम्बन्धित अन्य पठनीय सामग्री का संक्षिप्त विवरण भी दिया जाता है। आधुनिक समय में विषय विशेष से सम्बद्ध कोश को भी उस विषय का विश्वकोश कहा जाता है–जैसे encyclopaedia of linguistics.

9.3 कोश में उपलब्ध सूचनाएँ

कोश चाहे एकभाषी द्विभाषी या बहुभाषी हो उसमें ऐतिहासिक तुलनात्मक एवं वर्णनात्मक सूचना होनी चाहिए। कोश की आधारिक इकाई शब्द होती है और शब्द से सम्बन्धित स्वनिमिक रूपस्वनिमिक, व्याकरणिक एवं अर्थपक्षीय सूचना प्रेषित करना कोश का अनिवार्य अंग कहा जा सकता है।

सामान्यतः एक कोश प्रविष्टि निम्नलिखित सूचनाएं प्रदान करती हैं–

1. वर्तनी

2. उच्चारण
3. पदवर्ग
4. विभक्ति
5. व्युत्पत्ति
6. अर्थ (वर्तमान)
7. प्राचीन अर्थ
8. प्रयोग संबंधी विशिष्टता
9. व्युत्पन्न शब्द
10. पर्यायवाची शब्द
11. समानार्थी शब्द

9.4 अर्थ के प्रकार

कोशों में प्रायः सभी प्रकार के अर्थ का उल्लेख किया जाता है। अर्थ के चार प्रकार दृष्टिगत होते हैं—

(i) संकेतार्थ referential meaning

इसे संकल्पनात्मक अर्थ भी कहते हैं। शब्द (भाषिक प्रतीक) का वह अर्थ जो वस्तु (संकल्पना) को नाम देता है संकेतार्थ कहलाता है। किसी शब्द द्वारा संवहित अर्थ के आधारिक एवं अनिवार्य घटक इसकी सीमा में आते हैं। सूई, मेज, पंखा आदि शब्दों का व्यवहार होते ही जो संकल्पना श्रोता के मस्तिष्क में उभरती है वह उसका संकेतार्थ है।

(ii) लक्ष्यार्थ connotative meaning

कोई भी शब्द सामान्य संकेतार्थ के अतिरिक्त कतिपय अन्य सूचनाओं को भी प्रेषित करता है जो संकेतार्थ से इतर होता है उसे लक्ष्यार्थ कहा जाता है जैसे सूई शब्द का प्रयोग पूर्व अनुभव के आधार पर श्रोता को दर्द, चुभन जैसे अर्थ का संज्ञान करा सकता है। लक्ष्यार्थ किसी भाषिक समुदाय के यथार्थ को देखने परखने के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है अर्थात् यह समाज एवं संस्कृति सापेक्ष होता है। यही नहीं जो लक्ष्यार्थ

आज किसी शब्द से जुड़ा है वह पच्चीस साल बाद भी उसी अर्थ में प्रयुक्त होगा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

(iii) प्रयोगार्थ

प्रयोगार्थ को दो रूपों में देखा जा सकता है-

सामान्य प्रयोगार्थ

सह प्रयोगार्थ

सामाजिक सान्दर्भिक परिस्थिति के अनुरूप किए गए प्रयोग प्रथम की सीमा में आते हैं, जैसे–हिन्दी तू, तुम एवं आप सर्वनाम का चयन सन्दर्भ पर निर्भर करता है।

किसी शब्द का किन अन्य शब्दों के साथ प्रयोग किया जा सकता है इसे सह प्रयोग की संज्ञा देते हैं। प्रायः भाषाओं में दो या अधिक शब्द एक अर्थ से सम्बन्धित मिलते हैं किन्तु उनके भाषिक परिवेश (सह प्रयोग) निश्चित होते हैं, जैसे–पीताम्बर का अर्थ है पीले वस्त्र वाला किन्तु उसका प्रयोग कृष्ण जी के लिए किया जाता है। किसी भी पीले वस्त्र वाले को पीताम्बर नहीं कहते हैं। यह अर्थ सह प्रयोगार्थ कहलाता है।

(iv) व्याकरणिक अर्थ grammatical meaning

वाक्य की व्याकरणिक संरचना अर्थगत भिन्नता स्पष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अनेक वाक्य अर्थपूर्ण कोशीय इकाइयों द्वारा रचित होने पर भी निरर्थक होते हैं, जैसे–छत घर बंदर की कूद है। यही नहीं कभी-कभी पूर्णतः व्याकरणिक होते हुए भी वाक्य निरर्थक होते हैं, जैसे–कुर्सी को बुखार हो गया है।

स्पष्ट है कि वक्ता एक ही विचार को एकाधिक तरीके से व्यक्त करने में सक्षम होता है। किसी सन्दर्भ में वक्ता एक संरचना की अपेक्षा दूसरी का प्रयोग करके अर्थ संप्रेषित करता है उसे ही संरचना का व्याकरणिक अर्थ कहते हैं।

कभी-कभी किसी संरचना के एकाधिक अर्थ होते हैं, जैसे–कच्चे आम और अमरूद के निम्न दो अर्थ लिए जा सकते हैं–

(i) कच्चे आम और कच्चे अमरूद

(ii) कच्चे आम और पके अमरूद

ये दोनों अर्थ इस संरचना के व्याकरणिक अर्थ कहलायेंगे।

9.5 कोश निर्माण में आगत समस्याएँ

किसी जीवन्त भाषा का कोश कदापि पूर्ण नहीं हो सकता, कोश निर्माण एक कठिन एवं श्रम साध्य कार्य है। कोश निर्माण कार्य में रत विद्वानों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा बहुत सी सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं।

कोश निर्माण कर्ता के समक्ष सर्वप्रथम समस्या कोश प्रविष्टियों के चयन एवं विन्यास की आती है। यही नहीं एकत्रित शब्दों के अर्थ प्रस्तुति करण के भी कई आधार हो सकते हैं अतः उसका भी ध्यान रखना पड़ता है। अर्थ को उदाहरण के माध्यम से व्याख्यायित करना भी आवश्यक होता है। एकभाषी कोश की भिन्न आवश्यकताएँ होती हैं तो द्विभाषी कोश की अलग। किसी भी भाषा के शब्द पूर्ण समतुल्य नहीं होते हैं। अतः द्वितीय भाषा भण्डार से निकटतम समतुल्य का चयन करना एक कठिन कार्य होता है। यह समस्या सांस्कृतिक शब्दों के संबंध में अत्यन्त गम्भीर रूप धारण कर लेती है। अतः कह सकते हैं कि किसी भी प्रकार के कोश को बनाने के लिए निम्नलिखित तत्त्वों का ध्यान करना कोशकार के लिए अनिवार्य होता है—

9.5.1 सामग्री संकलन

कोशकार को सर्वप्रथम सामग्री के संकलन पर ध्यान देना पड़ता है। सामग्री का संकलन लिखित भाषा से भी दिया जा सकता है या मौखिक भाषा भी सामग्री संकलन में स्रोत रूप में रहती है। कभी-कभी दोनों स्रोतों के माध्यम से कोशकार कोश हेतु सामग्री एकत्रित करता है। लिखित भाषा का आधार किसी भाषा में रचित सम्पूर्ण (प्राचीन एवं आधुनिक) साहित्य होता है जबकि मौखिक सामग्री संकलन के पूर्व कोशकार के लिए क्षेत्र निर्धारित करना आवश्यक होता है। इस प्रकार के संकलन हेतु समाज भाषिक पद्धति एवं परिवर्त्यों का ज्ञान कोशकार के कार्य में सहायक होता है।

9.5.2 प्रविष्टि

किसी कोश में प्रस्तुत शब्द, विषय संबंधी संकल्पना या मुहावरा आदि कोश की प्रविष्टि कहलाती है। प्रविष्टि के स्वरूप में कोश के उद्देश्य प्रकृति आदि के आधार पर भिन्नता मिलती है। कतिपय कोशों में स्वतन्त्र शब्दों को प्रविष्टि के रूप में चुना जाता

है। आजकल अनेक कोश प्रत्ययों को भी स्वतन्त्र प्रविष्टि के रूप में प्रस्तुत करने के पक्षधर है। इसी प्रकार कुछ कोशों में सामासिक शब्दों को अथवा मुहावरों को अन्त में देते हैं जबकि कुछ कोश इन्हें मुख्य कोश के अंग के रूप में रखते हैं। स्पष्ट है कि प्रविष्टि चयन का निर्णय कोशकार करता है जो मुख्यतः कोश के उद्देश्य पर निर्भर करता है। चुनी हुई प्रविष्टि के वर्गीकरण पर भी ध्यान देने की आवश्यकता होती है। यही नहीं चयनित प्रविष्टियों की वर्तनी के संबंध में भी सावधानी रखनी पड़ती है क्योंकि प्रायः भाषाओं में एक ही शब्द की कई वर्तनी प्रचलित हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में कोशकार के समक्ष दो विकल्प होते हैं—(1) एकाधिक वर्तनी वाले शब्दों को यथावत प्रस्तुत करे, जैसे--हिन्दी उलटा-उल्टा, स्थाई-स्थायी अथवा (2) जिस वर्तनी का प्रयोग कम हो रहा हो उन्हें छोड़ दे। प्रविष्टियों को किस क्रम में रखा जाए यह भी कोश निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है। प्रायः कोशों में लिपि क्रम के आधार पर संकलन होता है जैसे—अंग्रेजी कोशों में रोमन लिपि के वर्ण-क्रम का पालन करते हुए a-z का क्रम रखते हैं। देवनागरी या इससे संबंधित लिपियों में स्वर पहले तथा व्यंजन बाद में आते हैं अतः क्रम भी उसी के अनुरूप होता है।

❊ ❊ ❊

10.0 अन्य शाखाएँ

सम्प्रति भाषाविज्ञान का विषय क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि उसे मात्र समाज या शैक्षणिक भाषाविज्ञान जैसे नामों तक समेटना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करने वाली भाषा का विश्लेषण करने वाले इस विषय से मानव द्वारा किए गए भाषा प्रयोग का कोई भी पहलू अछूता नहीं है। पुस्तक के आरम्भिक अध्यायों में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की प्रचलित एवं महत्त्वपूर्ण शाखाओं का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय के अन्तर्गत पाठक को भाषा प्रयोग से सम्बद्ध अन्य क्षेत्रों का संक्षिप्त परिचय मिलेगा।

10.1 जैविक भाषाविज्ञान bio linguistics

भाषा विकास एवं प्रयोग के लिए अनिवार्य जैविक स्थितियों का अध्ययन एवं विश्लेषण जैविक भाषाविज्ञान कहलाता है। इस प्रकार का अध्ययन दो भिन्न दृष्टिकोणों से किया जा सकता है–

- मानव जाति में भाषा विकास का इतिहास
- व्यक्ति विशेष में भाषा का विकास

सन् 2000 में भाषाविद जेनकिंज़ की पुस्तक 'बायो लिंग्विस्टिक्स' के प्रकाशन के साथ भाषाविज्ञान की इस शाखा का आरम्भ हुआ। इस पुस्तक के आरम्भ में लेखक ने भाषा से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रश्नों की चर्चा की है–

- भाषा क्या है?
- भाषा क्षमता कैसे प्राप्त होती है?
- भाषा व्यवहार क्या है?

- भाषा के पीछे कौन सी स्नायविक प्रक्रियाएँ कार्य करती हैं?
- मानव जाति में भाषा का विकास कैसे हुआ है?

जेनकिंज़ का मानना है कि उपर्युक्त प्रश्नों के समाधान ही जैविक भाषाविज्ञान के क्षेत्र का निर्माण करते हैं। ध्यान दें कि इनमें से एकाधिक प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने का कार्य मनोभाषाविद् या स्नायविक भाषाविद् भी करता है अतः कह सकते हैं कि इनके विषय क्षेत्र में परस्पर आच्छादन मिलता है।

10.2 क्षेत्रीय भाषाविज्ञान areal linguistics

क्षेत्र विशेष से जुड़ी विशेषताओं का अध्ययन क्षेत्रीय भाषाविज्ञान शीर्षक के अन्तर्गत किया जाता है। यह एक क्षेत्र में व्यवहृत भाषा और उसकी बोलियों के वितरण का अध्ययन करता है। कभी-कभी इसे ही भौगोलिक भाषाविज्ञान (geographical linguistics) नाम भी देते हैं। समाज में बोले गए रूपों की भिन्नता के आधार पर क्षेत्रीय विभाजन की इस पद्धति के आधार पर छोटी-बड़ी समस्त स्थानीय बोलियों का अध्ययन करने के कारण इसे बोली भूगोल (dialectology), भाषा भूगोल (linguistics geography) आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। इस प्रकार क्षेत्र विशेष में प्राप्त वैविध्य तथा उसके ऐतिहासिक पूर्ववृत्त का वर्णन इस शाखा का विवेच्य विषय है। अध्ययन के आधार पर प्राप्त सामग्री बोलियों के क्षेत्रीय वर्गीकरण में सहायक होती है।

10.3 धर्म भाषाविज्ञान theolinguistics

प्राचीन पवित्र पाठों, उपदेशों, सैद्धान्तिक कथनों, समाज के सदस्यों के विश्वास संबंधी मतों आदि के आधार पर स्थापित धार्मिक विचारों एवं भाषा के संबंध का अध्ययन करने वाली शाखा धर्मभाषाविज्ञान कहलाती है।

10.4 सांस्थानिक भाषाविज्ञान Institutional linguistics

किसी विशेष व्यावसायिक सन्दर्भ (कानून, मेडिसन, व्यवसाय, शिक्षा) में व्यवहृत भाषा को केन्द्र में रखकर किए गए कार्य इसके क्षेत्र में आते हैं। विषय की दृष्टि से समाज भाषाविज्ञान एवं शैलीविज्ञान के क्षेत्रों से परस्पर आच्छादन के कारण इस शाखा का स्वतन्त्र रूप में अधिक विकास नहीं हुआ है।

10.5 अन्वेषण भाषाविज्ञान forensic linguistics

अपराध जगत से जुड़े लोगों की पहचान के लिए भाषायी तकनीकी के प्रयोग का क्षेत्र अन्वेषण भाषाविज्ञान कहलाता है। इसके अन्तर्गत भाषिक तथ्यों को प्रमाण मानकर अपराध या अपराधी की खोज की जाती है। व्याकरणिक एवं कोशीय आधारों का प्रयोग पुलिस एवं अपराधियों के कथन की सत्यता को जानने के लिए किया जाता है। कतिपय विद्वान अन्वेषण स्वनविज्ञान को एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मानते हैं जिसके अन्तर्गत रिकार्डेड टेप के विश्लेषण द्वारा वक्ता की पहचान, विवादित कथनों के विकोडीकरण जैसे अनेक मुद्दों की खोज की जाती है।

10.6 पारिस्थितिक भाषाविज्ञान ecolinguistics

भाषा एवं उसके सांस्कृतिक पर्यावरण के मध्य घटित अन्तःक्रिया पारिस्थितिक भाषाविज्ञान का विवेच्य विषय होता है। इसे कभी-कभी 'ग्रीन लिंग्विस्टिक्स' (green linguistics) नाम भी दिया जाता है। यह विश्व में प्राप्त भाषिक विविधता के महत्त्व को रेखांकित करता है। इसके अन्तर्गत सम्प्रेषणपरक शान्ति की स्थापना को बढ़ावा देने में व्यक्ति एवं समुदाय/समाज विशेष के भाषिक अधिकारों के महत्त्व एवं भाषा अभिवृत्ति की भूमिका, भाषा जागरुकता, भाषा वैविध्य तथा परिवर्तन आदि का अध्ययन विश्लेषण किया जाता है।

10.7 स्नायविक भाषाविज्ञान neurolinguistics

मानव चेतना का स्वरूप, मस्तिष्क के कार्य एवं भाषा संरचना के पीछे कार्यरत स्नायविक प्रक्रिया को जानने समझने का प्रयास जिस क्षेत्र में होता है उसे स्नायविक भाषाविज्ञान की संज्ञा दी जाती है। सर्वप्रथम 1971 में हैरी व्हिटेकर नामक विद्वान ने इस शब्द का पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयोग किया। भाषा मानव मन की बोध शक्ति का अभिन्न अंग है। भाषा सीखना एवं उसका प्रयोग जितना सरल प्रतीत होता है उसका ज्ञान, उस प्रक्रिया की पूर्ण जानकारी प्राप्त करना उतना ही कठिन कार्य है। मानवीय बोध क्षमता से जुड़े होने के कारण इसे स्नायविक बोधपरक भाषा विज्ञान (neuro cognitive linguistics) नाम भी दिया जाता है। यह शाखा भाषा संबंधी निम्नांकित बिन्दुओं का अध्ययन विश्लेषण करती है—

- मानवीय सम्प्रेषण किन जैविक तत्वों पर आधारित है?
- मानव द्वारा भाषा का संसाधन एवं संज्ञान कैसे किया जाता है?
- मस्तिष्क पर लगने वाला आघात/चोट भाषा को कैसे और किस-किस प्रकार से प्रभावित करता है?
- मानवीय मस्तिष्क में भाषा कैसे व्यवस्थित रहती है? आदि।

10.8 नृभाषाविज्ञान anthropological linguistics

मानवीय सांस्कृतिक अभिरचनाओं एवं विश्वासों में भाषा की भूमिका के संबंध का अध्ययन इसके विषय क्षेत्र का निर्माण करता है। भाषाविद् नृविज्ञान की पद्धति एवं सिद्धान्त की सहायता से इस संबंध को उद्घाटित करने का प्रयास करता है। एक भाषिक समुदाय के वक्ता/सदस्य को विभिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं व्यावसायिक आदि परिस्थितियों में किए गए व्यवहार में प्राप्त विशिष्ट भाषिक अभिलक्षणों के आधार पर पहचाना जा सकता है। किसी भी सामाजिक स्थिति (दिन प्रतिदिन का वार्तालाप, भाषण, चर्चा आदि) को नृशास्त्री दृष्टि से परखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में प्राप्त निष्कर्षों को भाषिक मानवशास्त्र (linguistic anthropology) की संज्ञा देते हैं जो मानवशास्त्र/नृविज्ञान की उपशाखा है किन्तु जब उपर्युक्त वर्णित स्थितियों को भाषावैज्ञानिक दृष्टि से परखते हैं तो उसे नृभाषाविज्ञान के क्षेत्र में परिगणित किया जाता है। यही नहीं विभिन्न संस्कृतियों एवं जातियों के व्यवहार एवं उनकी भाषा का अध्ययन विश्लेषण भी इसके क्षेत्र का अंश है जिसे कतिपय विद्वान 'नृजाति भाषाविज्ञान' नाम देते हैं। 19वीं एवं 20वीं शताब्दी के अनेक अमरीकी भाषाविद् यथा सपीर, व्होर्फ ब्लूमफील्ड आदि ने नृभाषाविज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किए।

10.9 क्षेत्र कार्य भाषाविज्ञान field linguistics

अल्पवर्णित अथवा अवर्णित भाषाओं का वर्णन एवं विश्लेषण प्रस्तुत करना क्षेत्र कार्य भाषाविद् का उद्देश्य होता है। सम्प्रति विश्व में ऐसी अनेक भाषाएँ हैं जो मौखिक रूप में स्थित हैं तथा जिनका प्रयोग बहुत छोटे समुदाय द्वारा किया जा रहा है। आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि कारणों से इनमें से कई भाषिक समुदाय अपने पारम्परिक तरीकों (रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल) को त्याग चुके हैं या त्यागने के लिए विवश हैं। क्षेत्र कार्य में संलग्न अनेक भाषाविद् विश्व फलक से विलुप्त हो रहीं

इन भाषाओं को बचाने और सँवारने में लगे हुए हैं। ये विद्वान भाषा संरक्षण एवं पुनरुद्धार की दिशा में प्रयासरत हैं। क्षेत्रकार्य भाषाविज्ञान क्षेत्र पद्यति; क्षेत्र कार्य तकनीक; भाषा प्रलेखीकरण जैसे भाषा संरक्षण के अनेकानेक पक्षों से संबंधित है।

10.10 प्रलेखन भाषाविज्ञान documentary linguistics

भाषा का कुशलता से प्रलेखन और वर्णन अत्यन्त प्राचीनकाल से किया जा रहा है। भाषा सम्बन्धी पाठ, शब्दकोश, व्याकरण तथा शब्दावली प्रकाशन की प्राचीन और सुदीर्घ मिलती है। पिछले कुछ वर्षों से इन कार्यों की गणना भाषाविज्ञान की नवीन शाखा प्रलेखन भाषाविज्ञान के अन्तर्गत की जाने लगी है। यह शाखा मुख्यतः विश्व भाषाओं एवं उनके प्रयोग के वर्णन और अभिरक्षण में संलग्न है। इसका आरम्भ भाषाई डेटा के निरूपण और अनुरक्षण के लिए प्रयुक्त प्रौद्योगिकी में हुए नवीन आविष्कारों से हुआ जो निरन्तर बढ़ता जा रहा है। फलस्वरूप छोटे देशीय समुदायों की भाषा एवं संस्कृति का संरक्षण कार्य भाषाई प्रलेखन से लाभान्वित हो रहा है। यही नहीं किसी भी समुदाय के वार्तालाप, आख्यान, भाषण, भाषा कौशल, औपचारिक, अनौपचारिक सम्प्रेषण आदि विभिन्न प्रकार के कोडों का प्रलेखन किया जाता है तथा शोध कार्य के फोकस के अनुसार उनका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार सुग्राह्य, नैतिक परिरक्ष्य डाटा का संरक्षण और अभिलेख करना इन विद्वानों का उद्देश्य कहा जा सकता है।

***

सन्दर्भ-ग्रन्थ

हिन्दी

कुमार सुरेश	1986	अनुवाद सिद्धान्त की रूपरेखा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
कुमार सुरेश	1977	शैलीविज्ञान, मैकमिलन।
गुरू कामता प्रसाद	2009	सम्वत् हिन्दी व्याकरण, काशी।
चौधरी सत्यदेव	1979	भारतीय शैली विज्ञान, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली।
जायसवाल महेश प्रसाद	1981	आधुनिक भाषाविज्ञान का इतिहास, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
तिवारी भोलानाथ और गोस्वामी कृष्ण कुमार	1980	अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, आलेख प्रकाशन, दिल्ली।
भटनागर रघुवीर	1974	आधुनिक भाषाविज्ञान की भूमिका, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
मिश्र विद्यानिवास	1973	रीतिविज्ञान राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
रस्तोगी कविता	2000	समसामयिक भाषाविज्ञान, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
रस्तोगी कविता	2003	भाषाविज्ञान परिभाषा कोश, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ।
	2008	भाषाविमर्श, न्यू रॉयल बुक कम्पनी, लखनऊ।
रेड्डी विजय राघव	1986	व्यतिरेकी भाषाविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
वर्मा राजगोपालन (सं.)	1989	भाषाशिक्षण तथा भाषाविज्ञान, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।
शुक्ल हीरालाल	2001	आदिवासी भाषाविज्ञान, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
शुक्ला शोभा व सुमेधा	2009	हिन्दी मुहावरे एक नवीन दृष्टिकोण, लेज़र ग्राफिक्स, लखनऊ।
श्रीवास्तव, भोलानाथ तिवारी	1997	हिन्दी भाषा संरचना और प्रयोग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
सहाय चतुर्भज	2007	हिन्दी पदविज्ञान, कुमार प्रकाशन, आगरा।
सिंह सूरजभान	1985	हिन्दी का वाक्यात्मक व्याकरण, साहित्य सहकार, दिल्ली।
सिंह सूरजभान	2006	हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद व्याकरण, प्रभात प्रकाशन दिल्ली।

अंग्रेजी

Aikhenvald & Dixon	2007	Grammars in Contact. India : OUP.
Bolinger, D.	1975	Aspects of Language, 2nd ed. New york : Harcourt Brace Javanovich.
Bloomfield, L.	1933	Language. New york : Holt.
Brown & yule	1983	Discourse Analysis, Cambridge : CUP.

विषय अनुक्रमणिका

लेखक अनुक्रमणिका (अंग्रेजी)

लेखक अनुक्रमणिका (हिन्दी)

❑❑

समसामयिक अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

प्रो. कविता रस्तोगी